।।ओ३म्।।

पाक्षिक परोपकारी

• वर्ष ६० • अंक १४ • मूल्य ₹१५ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र • जुलाई (द्वितीय) २०१८

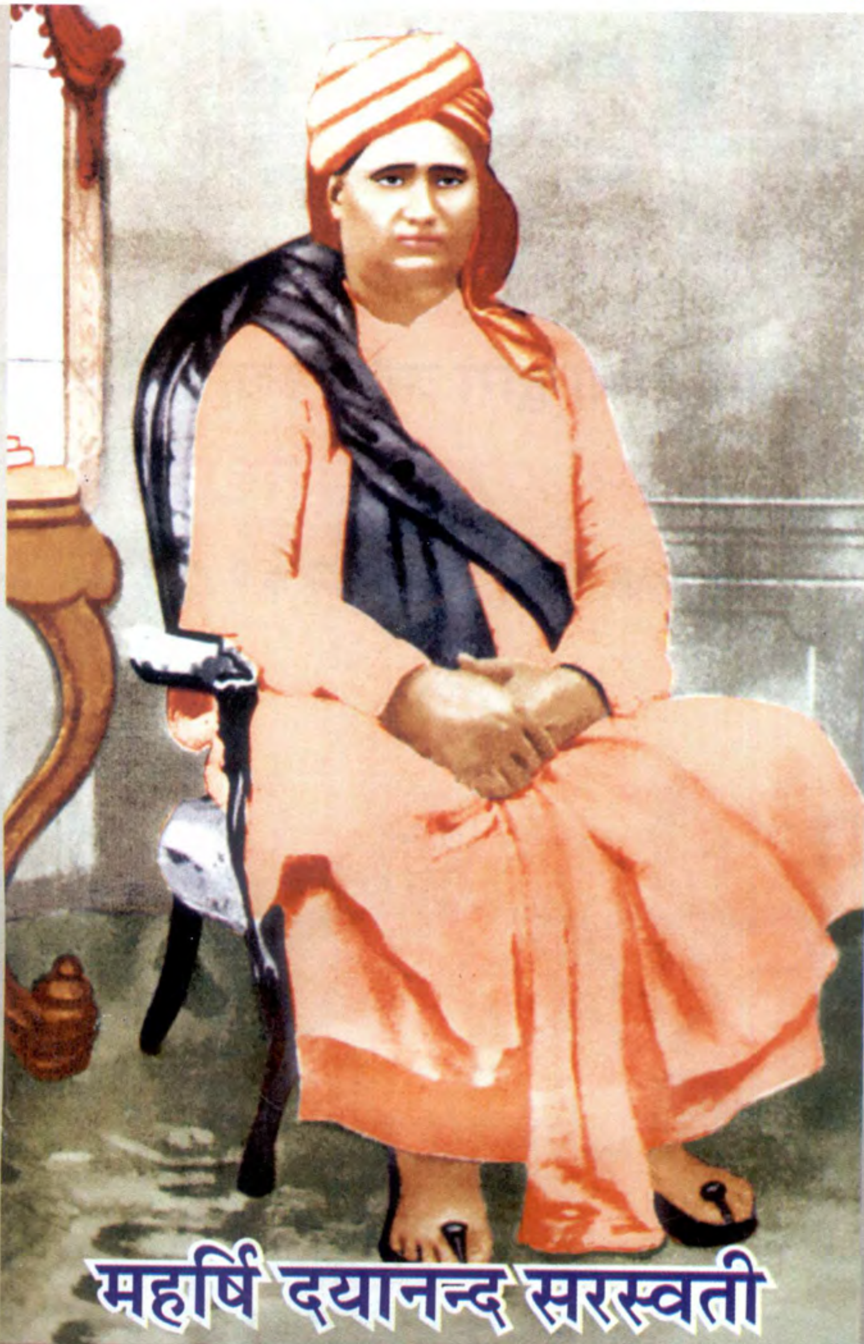

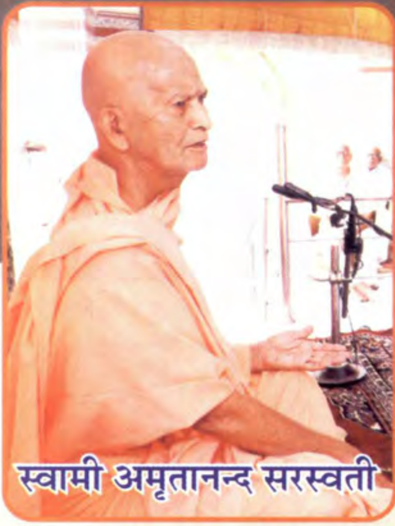

स्वामी अमृतानन्द सरस्वती

स्वामी केवलानन्द सरस्वती

डॉ. वेदपाल

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान में आयोजित

ग्रीष्मकालीन ध्यान-साधना शिविर

(१७ से २४ जून २०१८)

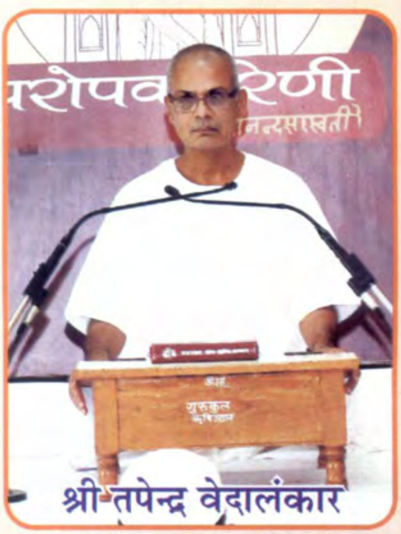

श्री तपेन्द्र वेदालंकार

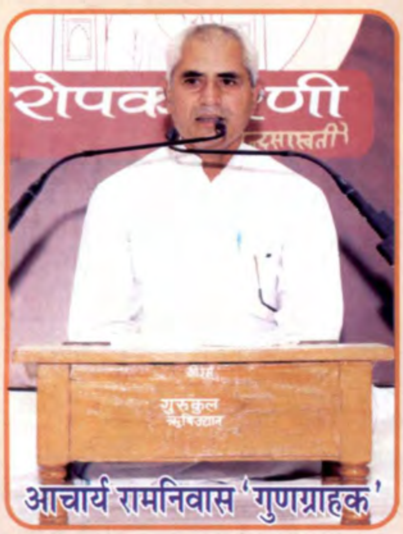

आचार्य रामनिवास 'गुणग्राहक'

डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० अंक : १४

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: आषाढ़ शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,

केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.

त्रिवार्षिक-५८० रु.

आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.

एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर

द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर

त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर

आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.

एक प्रति - ३ पाउण्ड

एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२११२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जुलाई द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१. अन्तरराष्ट्रीय योगदिवस और...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-१०	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. तुम भी कुछ बन जाओगे...	सोमेश पाठक	०९
०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१२
०५. उपनिषद्-वर्णित त्रिवृत्करण	आ. उदयवीर शास्त्री	१६
०६. अच्छे लोकसेवक	तपेन्द्र वेदालङ्कार	१९
०७. अमर शहीद आर्यमुसाफिर....	वेदारी लाल आर्य	२३
०८. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२६
०९. आर्यो! वैदिक धर्म का पालन करो	पं. नन्दलाल निर्भय	२७
१०. 'बसना और विहँसना सहज....	देवनारायण भारद्वाज	३०
११. शङ्का समाधान- २९	डॉ. वेदपाल	३५
१२. भक्त अमींचन्द जी	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	३७
१३. इतिहास की परतें- मास्टर....	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	३९
१४. योग-साधना एवं स्वाध्याय शिविर		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

अन्तरराष्ट्रीय योगदिवस और आर्यसमाज

भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के सत्प्रयासों से संयुक्त राष्ट्र ने २१ जून को अंतरराष्ट्रीय **योग दिवस** घोषित किया। इसमें पतंजलि योगपीठ के स्वामी रामदेव का भी पर्याप्त योगदान है, जो पिछले कई वर्षों से यौगिक आसनों, प्राणायामों तथा आयुर्वेदिक औषधियों को लोकप्रिय बना रहे हैं। प्रसन्नता की बात यह है कि अधिकृत रूप से संयुक्त राष्ट्र द्वारा **योगदिवस** घोषित होने से विश्व के अधिकतर देश भारतीय योग (आसन, प्राणायाम, व्यायाम) करने में जुट गए, जिनमें मुस्लिम देश भी प्रमुखतया सम्मिलित हैं। कुछ राष्ट्रों की संसदों में भी योगदिवस पर उपर्युक्त योग का अभ्यास किया गया।

आध्यात्मिक और मानसिक तौर पर अस्वस्थ जन भी शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहना चाहते हैं, क्योंकि शारीरिक रूप से अस्वस्थ होने का मतलब है जीवन में प्रत्यक्ष असफलता, दूसरों पर निर्भरता या फिर दवाइयों के आश्रय से जीवन का निर्वाह। अत: अधिकांश जन इस दिवस पर या दैनिक जीवन में इस पद्धति के योगाभ्यासी लोग मुख्यत: शारीरिक व्यायाम भर कर रहे होते हैं, जिसका यत्किंचित् प्रभाव उनके मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर भी शायद पड़ता है। अत: **योग** शब्द के दुरुपयोग को लेकर चिन्तित होने वाले शास्त्रीय विद्वानों को इसकी अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि अष्टांगों का पालन किए बिना योग हो रहा है या नहीं। आशा अवश्य करनी चाहिए कि ऐसे व्यायामशील जन शायद **पातंजल योग** को भी समझ कर उस के अभ्यासी बनें और समाधि एवं मोक्ष का आनंद लेने के योग्य हो सकें। योग सम्प्रदाय नहीं, योग रहस्य नहीं बल्कि योग मानवमात्र का अनिवार्य धर्म है, जो मनुष्य को श्रेष्ठतम जीवन जीना सिखाकर मोक्ष-मार्ग की ओर ले जाता है।

भारतीय या वैदिक संस्कृति प्राचीनतम किंवा शाश्वत और व्यापक परिवेश वाली है। इसमें धर्म, अध्यात्म, जगत्, समाज इत्यादि जीवन के सभी तत्त्वों का आदर्श रूप परिलक्षित होता है। इसकी विशेषता यह भी है कि ब्रह्मांड में उपस्थित सभी तत्त्वों, प्राणियों एवं विचारों का इसमें सामञ्जस्यपूर्ण रूप दृष्टिगोचर होता है। वेदज्ञान से नि:सृत लोकोपकारी अंग-उपांग-रूप साहित्य यह दर्शाता है कि व्यष्टि एवं समष्टि के लिए आवश्यक सभी आवश्यक दिशानिर्देशों का संक्षिप्त या बृहद् वर्णन ऋषियों ने विभिन्न ग्रन्थों के माध्यम से लोक को उपलब्ध कराया है। विशेषता यह भी है कि इसमें स्वेच्छाचार या अनावश्यक बातों का समावेश नहीं है। योगशास्त्र भी एक ऐसी ही विधा है जो वैदिक संस्कृति, सभ्यता और दर्शन के अनुसार व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से अपरिहार्य है। योग-विद्या के अभ्यास से मनुष्य का आत्मा संभावित उच्चतम विकास को प्राप्त कर सकता है, अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति को चरम तक ले जा सकता है। इसमें उसकी सामाजिक स्थिति और तत्संबन्धी दायित्वों के सम्यक् निर्वहन का भी आदर्श प्रावधान है। इस प्रकार योग-विद्या या विधा व्यक्ति और समाज के लिए अपरिहार्य है।

महर्षि पतंजलि ने जिस योगशास्त्र का प्रणयन किया वह वैदिक ज्ञान-विज्ञान के क्रम में अनिवार्य पद्धति या विचार है। मनुष्य स्वयं को समझे, अपने रचयिता को जाने, जीवन के उद्देश्य को जाने और उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज में रहते हुए विशेषत: प्रयत्न करे। '**योग**' शब्द का धात्विक अर्थ यह बताता है कि आध्यात्मिकता में यह 'समाधि' के लिए प्रयुक्त होता है। अर्थात् इसका निहितार्थ समाधि-स्थिति की प्राप्ति है। यह समाधि ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का अपर नाम है। किन्तु लोक में वर्तमान में और भूतकाल में अनेक योग-पद्धतियाँ प्रचलित हुईं, जो अधिकांशत: आर्ष नहीं हैं। कहना अनुचित न होगा कि **योग** के नाम पर व्यायाम, शारीरिक शुद्धि की विधियों या ढोंग-पाखंडों को प्रचलित कर दिया गया है। पतंजलि के नाम से प्रसिद्ध होने पर भी उनके योग-शास्त्र को समझने और उसका अभ्यास करने का प्रयास कम ही दृष्टिगोचर होता है। पतंजलि ऋषि ने मनुष्य के आत्म-विज्ञान और साथ ही सूक्ष्मतम मनोविज्ञान का मार्ग अपने शास्त्र के माध्यम से प्रस्तुत किया। साथ ही,

उसकी सामाजिक उपादेयता या अपरिहार्यता तथा क्रियात्मक पद्धति भी सम्यक् रूप से उन्होंने वर्णित की है। इस पद्धति पर चलकर मनुष्य अपने आत्मिक जीवन में उच्चता को प्राप्त कर सकता है, सामाजिक-पारिवारिक जीवन में संतुलन स्थापित कर प्राणिमात्र के प्रति द्वेष एवं शत्रुता से रहित अर्थात् मित्रतापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है। हम जानते हैं कि एक आदर्श वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन-शैली के अभाव में अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं, जिनके कारण व्यक्ति विभिन्न उद्वेगों को प्राप्त होकर न केवल व्यक्तिगत जीवन में नैराश्य भर लेता है, बल्कि समाज के लिए कोई योगदान न देकर उसके लिए समस्या बन जाता है। ऐसे लोग संख्या में अधिक होने पर समाज की अवनति के कारण बनते हैं। आश्चर्य नहीं कि मनुष्य की आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक दुर्बलताओं का लाभ उठाते हुए तथाकथित धर्मगुरु, फलित ज्योतिषी, चालाक छद्म आध्यात्मिक गुरु और स्वयं विभिन्न ग्रंथियों और दुर्बलताओं के शिकार आचार्य लोग उन्हें **योग** और अध्यात्म के नाम पर ठगते हैं, स्वयं के भव्य आश्रम बनाकर अपनी दुकानों की ओर लोगों को आकृष्ट करते हैं। इनमें ऐसे धर्मगुरु और आचार्य भी होते हैं जिनकी सद्भावनाएँ होती हैं, परन्तु वे अधिकांशतः ऐसी तथाकथित योग-पद्धतियाँ प्रचलित करते हैं, जो आर्ष अथवा सत्य-मार्ग से दूर होती हैं।

अस्तु, यदि कोई योग-पद्धति अपूर्ण हो और हानिकर न हो, तो उसका प्रचलन उतना बुरा नहीं है जितना कि कुछ भी न करना, परन्तु ऋषि-प्रणीत, वेदानुकूल योग-पद्धति को त्यागना प्रज्ञापराध ही कहा जाएगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक में योग की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित कर दी गई हैं और ये सभी भिन्न-भिन्न अनार्ष मान्यताओं पर आधारित हैं। महर्षि दयानन्द का सर्वाधिक योगदान यह है कि उन्होंने अपने ग्रन्थों, पत्रों और विज्ञापनों में कहीं पर भी यह उल्लेख नहीं किया कि आर्यों को योग सीखने के लिए किसी योगी के पास जाना चाहिए या सब-कुछ त्याग कर गिरि-वनों में बैठना चाहिए। वेदोक्त ज्ञान, कर्म और उपासना की जिस विधि को महर्षि दयानन्द ने अनुभव और साक्षात्कार से प्राप्त किया उसी का उपदेश उन्होंने आर्यजनों को दिया है। वर्तमान में योग शारीरिक व्यायाम और शरीर के बाह्य रोगों के निदान के लिए स्वीकार की जाने वाली क्रियाविधियों तक ही सीमित है। कुछ मानसिक शान्ति और एकाग्रता की प्राप्ति भी होती है। जबकि **अष्टांग योग** के माध्यम से आचार और विचार को शुद्ध एवं पवित्र बनाना और तात्त्विक मान्यताओं के साथ जुड़कर जीवन के परम लक्ष्य **ब्रह्म** को प्राप्त करना योग का उद्देश्य था। योगतत्त्व में आर्यसमाज ने सभी आश्रमियों के लिए जिस सरल अनुभूत, संध्या और यज्ञ के माध्यम से स्पष्ट आर्ष विचारों को प्रस्तुत किया है वे सब योगपथिक के लिए आवश्यक हैं। गृहत्याग कर जंगलों में रहकर योग सीखना जैसी विधि आर्यसमाज में कहीं उल्लिखित नहीं पाई गई है, इसलिए योग की सरलतम अनुभूत विधि महर्षि दयानन्द की है और यही आर्यों को स्वीकार करनी चाहिए अर्थात् यम-नियमादि का पालन करते हुए प्राणायामपूर्वक परमात्मा की उपासना करना।

किसी समय में वैराग्यवान् जन विशुद्ध वायुमंडल वाले गिरि-वन-प्रदेशों में सिद्ध योगियों से प्राणायाम-ध्यान की पद्धतियाँ सीखने जाया करते थे। महर्षि दयानन्द के समय में भी बहुत खोजने पर भी उन्हें गिनती के कुछेक सिद्ध ऐसे मिले थे, जो ये पद्धतियाँ जानते थे। अतः महर्षि ने लोककल्याण के लिए सरलतम रूप में योग-पद्धति का अपने ग्रन्थों में प्रणयन किया।

आज योग के नाम से जिन चमत्कारों, पाखण्डों और ढोंगों के प्रचार का कार्य मीडिया के माध्यम से किया जा रहा है वह सत्र वैदिक विचारों के विरुद्ध है। इसका खण्डन आवश्यक है और यह कार्य ऋषियों की पद्धति मानने वाला केवल आर्यसमाज ही कर सकता है, जिससे भोली-भाली जनता योग के भ्रामक प्रचार से बच सके और योगशास्त्र की मूल प्रवृत्ति को स्वीकार कर सके। चूँकि मानव की अभिलाषा निरोग रहने की और दुखों से दूर होने की है, इसलिए जब व्यक्ति विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है तो वह तथाकथित योग के नाम से प्रचलित सम्प्रदायों से अपनी भावनाओं के अनुरूप उस सम्प्रदाय में सम्मिलित हो जाता है, लेकिन अन्ततः वह अपने को ठगा हुआ महसूस करता है - धन से भी और

मन से भी।

इसलिए योग ऋषियों के द्वारा निर्दिष्ट परमतत्त्व की ओर उन्मुख होने का एक मार्ग है और यह मार्ग शरीर, मन की शुद्धि से ही प्रारम्भ होता है जिसके लिए रहन-सहन, खानपान, बोलचाल और व्यवहार की शुद्धि होनी आवश्यक होती है। ये ही यम-नियम के नाम से ख्यात वैयक्तिक और सामाजिक कर्त्तव्य एवं दायित्व हैं। इससे मनुष्य शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ होकर आत्मिक अनुभूति की ओर उन्मुख होने लगता है। यह जगत् शंकर के दर्शन में उल्लिखित माया अर्थात् मिथ्या नहीं है, यथार्थ है। इसलिए यथार्थ की तरह ही इसका उपयोग होना चाहिए और इस उपयोग में नैतिकता, सहजता, सरलता, और प्रकृति के प्रति साहचर्य की भी आवश्यकता है। जब-जब हम इन प्रवृत्तियों को स्वीकार करते हैं तब-तब हम ऋषियों की विचारधारा, जिसमें मानव-मानव के प्रति स्नेह, जगत् के प्रति कर्त्तव्य-बोध इत्यादि सम्मिलित हैं, को स्वीकार करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त होते हैं। महर्षि कहते हैं-

''चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाके, शुभ गुणों में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को 'योग' कहते हैं और 'वियोग' उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा (वेद) से विरुद्ध बुराइयों में फँसके उससे दूर हो जाना।'' (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासना विषयः)

शरीर, मन और आत्मा को पृथक्-पृथक् जानते-समझते हुए वेदानुकूल पतंजलि मुनि के योग मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि योग मुख्यतः दुःख से निवृत्ति अर्थात् मोक्ष का कारण होता है-

योगे मोक्षे च सर्वासां, वेदनानामवर्त्तनम्।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा, योगो मोक्षप्रवर्त्तकः।।

(चरक/१३७)

(योग और मोक्ष में सभी प्रकार की वेदनाएँ अर्थात् दुःख समाप्त हो जाते हैं। और मोक्ष में तो दुःखों की पूर्णतः निवृत्ति होती है। इस प्रकार **योग मोक्ष का कारण है**।)

-दिनेश

प्रवचनमाला-२५

मृत्यु सूक्त-१०

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।।

इस वेद-ज्ञान की चर्चा में हम ऋग्वेद के दशम मण्डल के १८ वें सूक्त पर चर्चा कर रहे हैं। हमने पहले मन्त्र का विचार करते हुए पीछे देखा कि हमारे जीवन में जितना महत्त्व जीवन का है, उतना ही महत्त्व मृत्यु का है। एक के बिना दूसरे का कोई अर्थ ही नहीं है। एक के अस्तित्व से ही दूसरे का अस्तित्व बनता है। एक का प्रारम्भ ही दूसरे की उपस्थिति का कारण है। इस विचार को देखते हुए इस मन्त्र में कहा गया है कि हे मृत्यु! तुम एक और मार्ग ढूँढो, तुम ये मार्ग छोड़ दो।

हमने विचार किया कि वो कौन सा मार्ग है, जिस पर मृत्यु आसानी से आती है और जिस पर आसानी से नहीं आती है। इस चर्चा के प्रसंग में हमने यजुर्वेद के एक मन्त्र पर विचार किया था और मन्त्र था- **वायुरनिलममृतमथेदम्भस्मान्तं शरीरम्। ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतं स्मर।** यह मन्त्र हमारा पूरा दर्शन है। हमारे पूरे जीवन का दर्शन है। यह जीवन की बात करता है, जीवन के बाद की बात करता है। हमने पिछली चर्चा में देखा, आत्मा गतिशील है, अनश्वर है, अमृत है किन्तु यह जीवात्मा जिस शरीर को धारण किए हुए है, यह शरीर भस्मान्तम् है। हमने इस शब्द पर विचार करते हुए अनुभव किया कि यहाँ कुछ और नहीं कहा गया केवल भस्मान्तम् कहा गया। अर्थात् इस शरीर को न तो गाड़ना चाहिए, न फेंकना चाहिए, न पानी में डुबोना चाहिए, बल्कि इसे तो जलाना ही चाहिए। इस चर्चा में हमने देखा था कि गाड़ने से क्या होता है, डुबाने से क्या होता है, ऐसे ही फेंक देने से क्या होता है और सबसे कम हानि या बिल्कुल न हानि हो, ऐसा जो उपाय है,

उसको हमारे ऋषियों ने 'अन्त्येष्टि' कहा था। हमने चर्चा की थी कि ये इष्टि है। इष्टि कहते है यज्ञ को। तो ऋषियों ने हमारे शरीर को इष्टि में बदल दिया। एक मुर्दे के जलाने को एक यज्ञ का रूप दे दिया और जो वायुमण्डल के प्रदूषण का, दुर्गन्ध का कारण बनने जा रहा था, उसे हमने वातावरण के शोधन का हेतु बना दिया, साधन बना दिया। वहाँ पर कहा **भस्मान्तम् शरीरम्**। घी और सामग्री और वेद-मन्त्रों से जब हम दाह-कर्म करते हैं, तो यह शरीर, केवल जलता नहीं है, बल्कि एक यज्ञ के रूप में, सारे वातावरण को दुर्गन्ध से मुक्त करने का काम करता है। इतनी घी, इतनी सामग्री इसके लिए अनिवार्य है, जिससे दुर्गन्ध का नाश हो और वातावरण अच्छा हो।

मन्त्र के पूर्व भाग में हमने देखा कि हमारे साथ दो बातें हैं-एक हमारा शरीर है, एक हमारा आत्मा है। हमने शरीर के विषय में बता दिया-**भस्मान्तम्,** समाप्त हो गया, अब इसके बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। ऋषि दयानन्द अन्त्येष्टि संस्कार के अन्त में लिखते हैं- जब मनुष्य का शव दाह हो जाए, अन्त्येष्टि क्रिया पूरी हो जाए, उसकी अस्थियों को उठाकर खेत में डाल दिया जाए तो उसके बाद उसके निमित्त से कुछ भी उसके लिए करना शेष नहीं रहता। हाँ, यदि कोई उसके नाम पर परोपकार का काम करना चाहे, धर्म का काम करना चाहे, तो जिसका जितना सामर्थ्य है वो कर सकते हैं।

यहाँ, जो कुछ शरीर को मानकर किया जाता है वो गलत क्यों है, मिथ्या क्यों है? हम शरीर को मानकर, शरीर के लिए कुछ काम बाद में करते हैं। एक तो हम यह सोचते हैं कि दूसरे दिन, तीसरे दिन करना है, चौथे दिन करना है, बारहवाँ करना है, तेरहवीं करनी है, छठी करनी है या बरसी करनी है। वास्तव में जो व्यक्ति मर गया, उससे हमारा कोई संबन्ध नहीं रहा। संबन्ध तो रहने वालों से हैं। एक तो वो हैं जो उनकी स्मृति में, उनके उत्तराधिकारी के रूप में विद्यमान हैं। दूसरे वो हैं जो उनसे लाभ उठाते हैं, उनके नाम पर उठाते हैं। यहाँ बड़ा सीधा-सा सिद्धान्त है, आप किसी को खिलाकर तृप्त हो जाओ, ये तो ठीक है। लेकिन यह समझना कि किसी दूसरे के खाने से तीसरे को तृप्ति होगी वो गलत है, इसलिए कि भोजन का संबन्ध शरीर से है, भोजन का संबन्ध आत्मा से नहीं है। यह भोजन आत्मा को प्राप्त होता ही नहीं है, जीवित दशा में भी आत्मा को प्राप्त नहीं होता है। ये तो, आत्मा का साधन जो शरीर है, उसके चलाने के लिए है। ऐसा तो नहीं हो सकता कि आप गाड़ी में तेल डालें और आपका पेट भर जाए? गाड़ी में तेल डालने से गाड़ी चलेगी ये तो ठीक है, लेकिन गाड़ी में बैठे हुए का भी पेट भर जाएगा, ये कैसे हो सकता है? जब वहाँ नहीं हो सकता तो यहाँ भी यह नहीं हो सकता। यहाँ भी यह शरीर आत्मा का 'रथ' है, आत्मा की यह गाड़ी है। जब तक गाड़ी है आपके पास आप गाड़ी में तेल डालते हैं। जिस दिन आपके पास गाड़ी नहीं रहती, तब क्या आप तेल गाड़ी के नाम पर डालते रहते हैं? मैंने एक ट्रैक्टर लिया था वो ट्रैक्टर दूसरे के घर चला गया, मैंने उसको बेच दिया, लेकिन उसमें तेल की जरूरत है। अब मैं यहाँ तेल डालूँ तो उस ट्रैक्टर में चला जाएगा? मेरी गाड़ी में तेल मैं नहीं डाल सकता, गाड़ी दूर है तो यहाँ तेल डालूँगा तो गाड़ी में तेल चला जाएगा, ऐसा नहीं होता। वैसे ही यहाँ किसी को भोजन कराने से, बाहर किसी को भोजन मिल जाएगा, ऐसा नहीं हो सकता। आत्मा को तो यहाँ रहते हुए ही नहीं मिलता। यह भोजन शरीर का है, शरीर को मिलता है, शरीर को मिलेगा और यह जिस शरीर में डाला जाएगा उसी को मिलेगा दूसरे को क्यों मिलेगा? लेकिन समाज ने एक व्यवस्था ऐसी बना ली कि कुछ लोगों की आजीविका कमाने की बजाए बताने से ही चल जाती है। ऐसे लोगों ने व्यक्तियों का शोषण करने का तरीका धर्म में सम्मिलित कर लिया। क्योंकि एक व्यक्ति अपने संबन्धी की स्मृति में है, उसके शोक में है, समाज के भय में है तो जैसा समाज के प्रतिष्ठित लोग कहते हैं वैसा कर लेता है। उसे लगता है कि वो अपने गए हुए, दिवंगत के लिए कर रहा है। इसी को देखते हुए वाममार्गियों ने इन पर कुछ व्यंग्य किए थे, कुछ प्रश्न किए थे। उन्होंने एक प्रश्न यह किया था कि **पशुश्चेन्य: त: स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति, स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।** तुम कहते हो हम यहाँ बकरे को, गाय को, भैंस को, भेड़ को मार के हवन में डालेंगे, तो इसकी मृत्यु नहीं होगी, ये स्वर्ग में जाएगा, तो वाममार्ग वालों ने पूछा कि भले लोगो! यदि यह स्वर्ग में जाएगा, तो उसने तो स्वर्ग माँगा नहीं था, स्वर्ग माँगने वाले घर में तुम्हारे माँ-बाप बैठे हैं, यह भला काम तुम उनके साथ क्यों नहीं करते, ताकि वो जल्दी से स्वर्ग भी चले जाएंगे और तुम्हारे घर का टंटा भी कट जाएगा। बूढ़ों की सेवा से भी बचोगे, झगड़े भी नहीं होंगे और उनका भी उद्धार हो गया और तुम्हारा भी हो गया। इसी तरह

उन्होंने यह कहा कि भाई ! तुम यह मानते हो कि यहाँ खिलाया हुआ मरे हुए को मिलता है, तो तुम ऐसा क्यों नहीं करते कि दूसरे शहर में गए हुए आदमी की थाली अपने घर में भोजन के समय लगाकर खिला दिया करो-**व्यर्थं पाथेयकल्पनम्**। फिर साथ में रोटी बनाकर देने की क्या आवश्यकता है, बस भोजन का समय हो, अपने यहाँ थाली रख दी और वहाँ उसको मिल गई।

जो बात संभव नहीं है, उसको हम मानकर के काम चलाते हैं। लेकिन उससे न तो उसका भला होता है जो गया, न ही उसका भला होता है जिसका गया। ये तो भला यदि किसी अंश में होता है तो ठगों का होता है, चतुर लोगों का होता है, चालाक लोगों का होता है। इसलिए इस शरीर के निमित्त कुछ नहीं किया जा सकता, कुछ करना उचित नहीं है, सम्मत नहीं है।

आत्मा वातावरण में कहीं भी रह सकता है, वो परमेश्वर की व्यवस्था में है, वो यहाँ है, कहाँ है उससे हमारा कोई सीधा संबन्ध नहीं है। जन्म से संबन्ध बनता है और मृत्यु से संबन्ध समाप्त हो जाता है। जन्म से पहले उसका हमारा क्या संबन्ध था? हम कोई बाजार में तो गए नहीं थे, ढूँढ कर लाए नहीं थे। हमें पता नहीं था कि कौन आ रहा है। लेकिन किसी का जन्म जब हो जाता है, उस दिन से वो हमारा होता है और जिस दिन वो मर जाता है, उसका देह छूट जाता है, उस दिन से उसका हमारा संबन्ध समाप्त हो जाता है। आपने इस शरीर को उत्पन्न किया था, शरीर आपके पास है। आपने आत्मा को उत्पन्न भी नहीं किया था, आत्मा आपके पास है भी नहीं। इसलिए यह सोचना कि हम आत्मा को खिला रहे हैं, यह अपने आपको धोखा देना है। एक गलत ज्ञान, एक गलत मान्यता को पालना है। इसके लिए हमने शब्द बना रखे हैं-श्राद्ध और तर्पण। अब क्योंकि हम संस्कृत पढ़ते-लिखते हैं नहीं, तो जो बता देता है, पण्डित जी जैसा कह देते हैं, वैसा हम कर लेते हैं। उन्होंने कहा कि श्राद्ध मरने के बाद होता है, हमने मान लिया कि मरने के बाद होता है। वो जैसा कहते हैं, उसी का नाम श्राद्ध है। जो तेरहवीं करते हैं, मृत्यु भोज करते हैं श्राद्ध करते हैं, इसका यथार्थ उनको पता ही नहीं है। क्योंकि श्राद्ध का विधान तीन पीढ़ियों का है जो जीवित रह सकती हैं अर्थात् जो सेवा करने वाले हैं, उन सेवा करने वाले के पिता हो सकते हैं, पिता के पिता हो सकते हैं या परदादा जीवित हो सकते हैं। इसलिए तीन का ही विधान भी है। जीवित का होगा तो तीन तक ही जीवित होते हैं, उससे आगे जीवित होने की संभावना कम है।

श्राद्ध का शब्दार्थ है- श्रद्धा से किया गया कार्य। श्रद्धा से किए गए कार्य को श्राद्ध कहते हैं। आप मरे में श्रद्धा करते हो, जीवित में श्रद्धा है ही नहीं। इसलिए आप जीवित का श्राद्ध नहीं करते। मरे में आपकी श्रद्धा है, मर गया अच्छा है, कुछ सामान दे गया, तो आप उसका श्राद्ध करते हो। जीवित में श्राद्ध करते, तो जीवित व्यक्ति को प्राप्त होता। अब मरे को आप देना चाहते हो, लेकिन लेने के लिए न हाथ हैं, न खाने के लिए मुँह है, ना रखने के लिए पेट है। ऐसा श्राद्ध आत्मा को न होकर के जिसको खिलाया जाता है उसी को मिलता है।

श्रद्धा से किए गए कार्य को श्राद्ध कहते है और यह जीवित माता-पिता, बड़े गुरुजनों का होता है और श्रद्धा से आप क्या करेंगे उनका-श्रद्धा से उनको भोजन करायेंगे, श्रद्धा से उनकी सेवा करेंगे, उनका आदर करेंगे, उनके योग्य कथन को स्वीकार करेंगे, आज्ञा को मानेंगे। श्रद्धा से जो भी आपने काम किया, वो श्राद्ध है। आप किसी त्यौहार के दिन उनके लिये अच्छा भोजन, उनकी पसन्द का भोजन बनाते हैं, यह श्राद्ध है। लखनऊ की एक आर्यसमाज श्राद्ध के दिनों में ही उत्सव रखती है। वो आने वाले विद्वानों का श्राद्ध भी करती है। वहाँ रहने वाले सदस्य भी अपने माता-पिता का, गुरुजनों का, बड़ों का श्राद्ध करते हैं। तो श्राद्ध जिसके प्रति श्रद्धा है, जिसमें विश्वास है, जिसके प्रति आदर है, उसका ही तो किया जाएगा। जो है ही नहीं, उसका क्या किया जाएगा? **श्राद्ध** और **तर्पण** दो शब्द हैं। तर्पण का शाब्दिक अर्थ है, जिसमें तृप्त किया जाए। अर्थात् दिल भर के खिलाया जाए, पिलाया जाए, दिया जाए, बोला जाए, सन्तुष्ट किया जाए अर्थात् जो कुछ उनको प्राप्त हो, जो कुछ उनकी आवश्यकता हो वो उनको आपकी ओर से इतनी की जाए कि उनको सन्तुष्टि हो जाए, यह उनका तर्पण है। यह तर्पण भी जीवित का होता है, मृत का तो हो नहीं सकता। **श्राद्धं चेत् तृप्तिकारणम्**- यदि श्राद्ध तृप्ति का कारण होता है, **व्यर्थं पाथेयकल्पनम्**। तो श्राद्ध और तर्पण दो ऐसे शब्द हैं जो एक गृहस्थ के लिए अवश्य करणीय हैं, लेकिन हम जीवित परिस्थिति में तो करते नहीं है और मरने के बाद करके उनका सम्मान तो नहीं बढ़ाते, किन्तु अपनी हानि अवश्य करते हैं। इस दृष्टि से यदि मृतक-भोज करते हो, किसी भी तरह से यदि उनके (मृतक के) लिए आप करते हो, तो वो निश्चित रूप से उनको प्राप्त होने वाला नहीं है। इसलिए मृत्यु के बाद आत्मा के लिए कुछ किया जाये ऐसा नहीं होगा, बल्कि जो है, जीवित है उसके लिए किया जाना ही श्राद्ध है। इसलिए यहाँ कहा- **भस्मान्तम् शरीरम्**।

३१ जुलाई जन्मदिवस पर विशेष

तुम भी कुछ बन जाओगे (आचार्य रामदेव)

सोमेश पाठक

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी ने एक आठ साल के बच्चे को गले लगाया और कहा-''शाबास, किसी समय तुम भी कुछ बन जाओगे।'' शायद पण्डित जी ने भी न सोचा होगा कि उनके ये शब्द महज एक आशीर्वाद नहीं बल्कि पत्थर की लकीर हैं। पण्डित जी का सम्बोधन बच्चे को था या सारे आर्यजगत् को? यह तो पता नहीं पर ये रहस्यमयी शब्द भविष्य के एक क्रियात्मक चित्र का सन्देश जरूर थे। पण्डित जी के वाक्य का 'कुछ' शब्द अपने सर्वांश की व्याख्या में न जाने कितने नवीन ग्रन्थों का मोहताज था? कभी-कभी परिणाम प्रारब्ध से ही जाने जाते हैं। कभी-कभी अन्तश्चेतना अनायास ही ऐसी भविष्य-वाणी कर देती है जिसमें फेर-बदल का अधिकार स्वयं नियति को भी नहीं होता। कुछ ऐसी ही भविष्यवाणी पण्डित गुरुदत्त ने इस बालक के प्रति कर दी थी। इस बालक का नाम रामदेव या जो आगे चलकर आचार्य रामदेव जी के रूप में जाना गया। जी हाँ! वही आचार्य रामदेव जो महान् इतिहासज्ञ के रूप में जाने जाते हैं। इतिहासज्ञ ही नहीं बल्कि जिन्हें महान् शिक्षाशास्त्री, महान् राजनीतिज्ञ, महान् दार्शनिक और महान् आचार्य माना जाता है। जिनकी योग्यता कभी अनुमेय नहीं हो सकी। जिनके अध्ययन की सीमा आज तक कोई न जान पाया। जिनकी स्मृति-शक्ति को देखकर अपने-पराये सभी चकित रह जाते थे। जो एक चलता-फिरता पुस्तकालय थे।

आचार्य रामदेव जी का जन्म बजवाड़ा गाँव, जिला-होशियारपुर, पंजाब में ३१ जुलाई सन् १८८१ ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम लाला चन्दूलाल था, जो कि आर्यसमाजी थे। इसलिये बालक रामदेव को बचपन से ही आर्य विद्वानों का सामीप्य प्राप्त था। रामदेव उन सौभाग्यशालियों में थे जिन्हें पं. गुरुदत्त की गोदी में खेलने का अवसर मिला था। जिन्हें पं. लेखराम का आशीर्वाद मिला था। जिन्हें स्वामी श्रद्धानन्द जैसा धर्मपिता मिला था। ये वो विभूतियाँ थीं जिनके दर्शन मात्र से जीवन बदल जाते थे और फिर रामदेव जी तो इन तीनों के प्रेम का पात्र भी रहे थे। बालक रामदेव का प्रारम्भिक अध्ययन लाहौर में हुआ। पहले सेन्ट्रल मॉडल स्कूल तथा बाद में डी.ए.वी. स्कूल में पढ़े। यहीं से मिडिल और मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। दुर्भाग्य से ये वो दौर चल रहा था जब पं. गुरुदत्त की मृत्यु के बाद आर्यसमाज में दो फाड़ हो गये थे। एक कल्चर्ड दल तो दूसरा महात्मा दल। रामदेव जी चूंकि डी.ए.वी. से सम्बन्ध रखते थे, इस कारण प्रारम्भ में उनका झुकाव कल्चर्ड दल की ओर था। कल्चर्ड दल के नेता लाला हंसराज जी थे और महात्मा दल के नेता लाला मुन्शीराम। यहाँ यह भी बताना उचित है कि आर्यसमाज के महापुरुषों की शीर्षस्थ पंक्ति में अपना नाम लिखाने वाले लाला हंसराज जी, आचार्य रामदेव जी के मौसेरे भाई थे।

आचार्य रामदेव जी का भी बाल-विवाह हुआ था। महज १३ वर्ष की उम्र में जालन्धर की विद्यावती जी के साथ आपका विवाह हुआ। विद्यावती जी कुछ समय कन्या महाविद्यालय, जालन्धर में पढ़ीं थीं। इस कारण कन्या-पक्ष की ओर से कन्या महाविद्यालय के संचालक लाला देवराज जी और लाला मुन्शीराम जी भी विवाह में सम्मिलित हुये थे। यही वो पहला अवसर था, जब रामदेव जी ने लाला मुन्शीराम को देखा था। एक लम्बे-चौड़े शरीर का आदमी, बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ रखाये अपने व्यक्तित्व मात्र से ही जनता में विशेष मालूम हो रहा था। इतने में किसी ने रामदेव जी से कहा कि ये ही महात्मा दल के लीडर लाला मुन्शीराम हैं। रामदेव जी चूँकि डी.ए.वी. के जोशीले युवक थे इसलिये आवेश में आकर अज्ञानतावश यह कह गये-''अच्छा, तो आर्यसमाज के सब झगड़ों की जड़ यही है।''

किसको मालूम था कि यह जोशीला युवक अपना सम्पूर्ण जीवन लाला मुन्शीराम जी के कदमों में रख देने वाला था। विवाह के कुछ दिनों बाद वर महोदय को ४-५ दिन ससुराल में रुकने का अवसर मिला। रामदेव जी को बचपन से ही पुस्तकों का व्यसन सा था। उन्हें पता चला कि यहाँ लाला मुन्शीराम जी का पुस्तकालय है। इस

पुस्तकालय को देखने की लालसा उन्हें लाला मुन्शीराम के पास खींच ले गयी। बस फिर क्या था, आँखों के आगे पड़ा परदा झट से उठ गया। उन्हें भी मालूम हो गया कि आर्यसमाज का उद्देश्य ग्रेजुएट पैदा करना नहीं है। यह कार्य तो और संस्थायें भी कर रही हैं। आर्यसमाज का उद्देश्य तो सच्चे धार्मिक विद्वान् और मिशनरी पैदा करना है, जो कि कॉलेज की वह पद्धति कभी नहीं कर सकती थी और आज भी नहीं कर सकती है। धीरे-धीरे रामदेव जी पर महात्मा दल का प्रभाव बढ़ने लगा। जिस कारण कॉलेज में भी उनका विद्रोह दिखने लगा था। वे स्त्री-समानता के प्रबल समर्थक थे। अपनी पत्नी को पर्दा करने से रोका तो अन्जाम यह हुआ कि पिता ने घर से निकाल दिया। अगले दिन कॉलेज पहुँचे तो वहाँ भी विद्रोही के लिये कोई स्थान नहीं बचा था। घर और कॉलेज एक साथ ही छूट गये। यह खबर जैसे ही लाला मुन्शीराम को मिली वे अगली गाड़ी से ही रामदेव से मिलने निकल पड़े। वहाँ जाकर रामदेव जी को समझाया कि अब न पिता की चिन्ता करो और न कॉलेज की। अब से मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम जितना पढ़ना चाहो मैं तुम्हें अपने खर्च से पढ़ाऊँगा। इसके बाद महात्मा मुन्शीराम उन्हें जालन्धर ले गये और **आर्य** पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में उन्हें रखवा दिया। यहीं वे विक्टर हाईस्कूल में हेडमास्टर हो गये। धीरे-धीरे उन्होंने निजी रूप से बी.ए. की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली।

सन् १९०५ ई. में महात्मा मुन्शीराम के अनुरोध पर आप गुरुकुल काँगड़ी गये और गुरुकुल को अपना जीवन दान कर दिया।

इसके बाद आप जिये तो गुरुकुल के लिये और मरे तो गुरुकुल के लिये। प्रारम्भ में आप अध्यापक के रूप में कार्य करते रहे तथा महात्मा मुन्शीराम के संन्यास लेने के बाद आप गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य बन गये। इतिहास जानता है कि गुरुकुल को आचार्य रामदेव की टक्कर का दूसरा आचार्य नहीं मिला। नियमों के पालन तथा व्यवस्थाओं में आचार्य रामदेव महात्मा मुन्शीराम से भी ज्यादा कठोर थे। आपने गुरुकुल की व्यवस्थाओं को इस तरह से सम्भाला कि गुरुकुल हर तरफ से मजबूत हो गया। उन्होंने गुरुकुल के पाठ्यक्रम में अद्भुत सुधार किये, जिसका परिणाम हमें उनकी शिष्य-परम्परा को देखने से पता चलता है। आर्यसमाज के इतिहास में अगर विद्वानों की गणना की जाये तो ५० प्रतिशत विद्वान् तो आचार्य जी के शिष्य ही होंगे।

आचार्य जी का अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनसे किसी भी विषय का समाधान मांगो तो तुरन्त बता दिया करते थे कि "फलां पुस्तक देख लो मिल जायेगा।" गुरुकुल के पुस्तकालय की शायद ही कोई पुस्तक बची होगी जो उन्होंने न पढ़ी हो। अंग्रेजी साहित्य पर उनकी असाधारण पकड़ थी। शायद ही कोई पाश्चात्य दार्शनिक बचा होगा जिसे आचार्य जी ने न पढ़ा हो। एक बार की बात है, महान् उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द जी गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर पधारे। मुंशी जी से पहले आचार्य जी को परिचय देने के लिये बोलना था। साधारणतया यह समझा जाता था कि आचार्य जी वेद, दर्शन, उपनिषद्, इतिहास आदि के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उनका साहित्य से क्या लेना-देना? लेकिन उस दिन आचार्य जी ने अनेक योरोपियन उपन्यासकारों की कृतियों की सूक्ष्मतम विवेचना कर दी तो लोग दंग रह गये। स्वयं मुंशी प्रेमचन्द को भी कहना पड़ा कि आचार्य जी ने जिन उपन्यासकारों की विवेचना की है उनमें से दर्जन भर के तो मैं नाम तक नहीं जानता।

आचार्य जी ने लेखन-कार्य भी बड़े स्तर पर किया। उन्होंने तीन भागों में **भारतवर्ष का इतिहास** लिखा, जो कि विश्व के साहित्य में एक अनुपम वृद्धि है। जिस वर्ष इस पुस्तक का पहला भाग छपा था, उस वर्ष सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तक यही थी। आचार्य जी ने **'पुराण मत पर्यालोचन'** नामक बृहद्ग्रन्थ की रचना की जिसमें चतुर्वेद भाष्यकार पं. जयदेव विद्यालंकार ने भी सहयोग किया। पटियाला अभियोग के समय महात्मा मुंशीराम और आचार्य रामदेव जी ने मिलकर **'दि आर्यसमाज एण्ड इट्स डिक्टेटर्स'** नामक पुस्तक लिखी। **'आइडियल्स ऑफ एजूकेशन एनशियेंट एण्ड मॉडर्न'** नामक उनका व्याख्यान गुरुकुल कांगड़ी से छपा। इस प्रकार अनेक पुस्तकों का प्रणयन आचार्य रामदेव जी के द्वारा हुआ। उन्होंने अनेक बड़े पत्र-पत्रिकाओं, सद्धर्मप्रचारक, प्रकाश, वैदिक मैगज़ीन जैसे बड़े पत्रों का सम्पादन और सहयोग करना आचार्य रामदेव जैसी प्रतिभा का ही काम था।

सन् १९३२ में आपने गुरुकुल से त्यागपत्र दे दिया,

और गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। इस सत्याग्रह में आपको पंजाब कांग्रेस के डिक्टेटर की हैसियत से १ वर्ष की जेल हुई। पहले आपको रावलपिण्डी जेल में तथा बाद में मुलतान जेल में रखा गया। जेल में रहने का प्रभाव यह हुआ कि आपका शरीर प्राय: रोगग्रस्त रहने लगा।

सन् १९३३ में अजमेर में दयानन्द निर्वाण अर्द्धशताब्दी मनायी गयी जिसके मुख्य सम्मेलन के प्रधान आचार्य रामदेव थे, जिसमें आचार्य जी की प्रेरणा से अनेक प्रस्ताव पारित किये गये, जिनमें एक यह था कि **आर्यसमाज के सदस्य का सदाचारी होना अनिवार्य है तथा एक यह भी था कि जो वेद को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानता वह परोपकारिणी सभा का सदस्य नहीं बन सकता।**

सन् १९३५ में उन्हें आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रधान चुना गया। इसी वर्ष सभा अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाने वाली थी, मगर लाहौर में सिक्खों और मुसलमानों का अत्यधिक तनाव होने के कारण इस उत्सव की तिथियाँ बदलनी पड़ीं तथा ३ अप्रैल १९३६ की तिथियाँ निश्चित की गयीं। ४ अप्रैल को आचार्य जी ने रेडियो पर एक भाषण दिया, जिसमें ऋषि दयानन्द के उपकारों की चर्चा की। इन दिनों आपका शरीर काफी रोगग्रस्त हो गया था।

आचार्य जी की सात सन्तानें थी, जिनमें २ पुत्र थे और ५ पुत्रियां थीं। जिनके नाम क्रमश: यशपाल विद्यालंकार, सत्यभूषण वेदालंकार, सुशीला, सीतादेवी, चन्द्रप्रभा, दमयन्ती, अरुन्धती देवी जी हैं।

जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं कि आचार्य जी स्त्री-समानता के प्रबल पक्षधर थे। उन्होंने स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में कुछ ऐतिहासिक कदम उठाये जो भारतीय इतिहास में सदैव महत्त्वपूर्ण स्थान रखेंगे, जिनमें कन्या गुरुकुल देहरादून की स्थापना और संचालन भी सम्मिलित है। इस गुरुकुल का प्रारम्भ आचार्य जी ने अपने घर से किया था। आचार्य जी के मन में मरते दम भी अगर कोई चिन्ता थी तो वह इसी गुरुकुल की थी। आचार्य जी ने अपने जीवन के अन्तिम दिन इसी गुरुकुल में गुजारे।

आचार्य जी अपने शरीर के विषय में बेपरवाह थे। डॉक्टरों के मना करने पर भी वे पठन-पाठन और गुरुकुल के लिये दानार्थ भ्रमण करते रहते थे। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उनका रोग पक्षाघात में बदल गया। आपने इस रोग के कारण तीन वर्ष विश्राम में ही बिताये। बीच-बीच में आपको स्वास्थ्य लाभ के लिये स्वास्थ्यप्रद स्थानों पर ले जाया गया, पर कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। निरन्तर रोगी रहने से आपका मन बहुत भावुक हो गया। थोड़ी सी भी भावुक बात आपको रुला देती थी।

कोई गुरुकुल के किसी स्नातक या स्नातिका की सफलता की चर्चा कर दे, कोई किसी पुरानी बात को याद दिला दे, कोई आर्यसमाज के प्रति चिन्ता प्रकट कर दे, तो आप रोने लगते थे। रोग-शय्या पर भी आप पुस्तकें पढ़ते रहते थे। पुस्तकों का व्यसन तो आपकी अन्तिम सांस तक आपके साथ रहा। आपकी पत्नी श्रीमती विद्यावती जी अन्तिम दिनों में निरन्तर आपकी सेवा करती रहीं। ८ दिसम्बर की रात्रि को यह निश्चय हो गया कि अब कुछ ही घण्टों का जीवन बचा है और ९ दिसम्बर सन् १९३९ को प्रात: साढ़े पाँच बजे आचार्य जी ने नश्वर देह का परित्याग कर दिया। अगर समय की दृष्टि से देखा जाये तो आचार्य जी महज ५९ वर्ष जिये। पर कार्य की दृष्टि से देखा जाय तो कोई १०० वर्षों में भी उतना न कर सके जितना उन्होंने ५९ वर्षों में कर दिखाया। और भला क्यूँ न कर दिखाते? महात्मा मुन्शीराम के मानस पुत्र होने का सौभाग्य जो प्राप्त था। ये वही आठ वर्ष का बालक था जो पेशावर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में नगर-कीर्तन में बड़े उत्साह से भजन गा रहा था। लोगों के कहने पर वह वहीं खड़े होकर तुरन्त मूर्तिपूजा के खण्डन में लैक्चर दे डालता है पर थोड़ी ही देर में भीड़ आगे बढ़ जाती है और वह बच्चा खो जाता है। लोग, जब उस बच्चे से उसके माता-पिता का नाम पूछते हैं तो बच्चा कहता है कि मुझे पण्डित गुरुदत्त के पास ले चलो। लोग उस बच्चे को आर्यसमाज मन्दिर तक पहुंचा देते हैं। पण्डित जी वहाँ बैठे कुछ सज्जनों से बात कर रहे होते हैं। अचानक बच्चे को देखते हैं तो पूछते हैं ''अरे! तुम कहाँ गुम हो गये थे?''

बच्चा भी अपनी सारी कहानी सुना देता है। उसकी लैक्चर देने वाली बात पर पण्डित जी बड़े खुश हो जाते हैं और उसे गले से लगाकर कहते हैं कि-

''शाबास, किसी समय तुम भी कुछ बन जाओगे।''

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

कुल्लियात के प्रकाशन का ऐतिहासिक यज्ञ- जब तक यह अंक पाठकों के हाथ में पहुँचेगा तब तक प्राणवीर शहीद शिरोमणि पं. लेखराम के ग्रन्थ-संग्रह 'कुल्लियात आर्य मुसाफिर' के प्रकाशन के ऐतिहासिक यज्ञ का पहला पड़ाव परोपकारिणी सभा ने पार कर लिया होगा अर्थात् इसके सम्पादन के दूसरे भाग का अति कठिन कार्य भी पूरा हो चुका होगा। प्रकाशन की प्रक्रिया की ओर सभा तीव्र गति से पग आगे धर रही है। हम बता चुके हैं कि आर्यसामाजिक साहित्य में सत्यार्थप्रकाश तथा ऋषि जीवन के पश्चात् वैदिक धर्म-प्रचार व जाति-रक्षा का सर्वाधिक श्रेय पं. लेखराम जी के साहित्य को प्राप्त है।

जब गुरुकुल व उपदेशक विद्यालय कहीं नहीं थे तब पण्डित जी का साहित्य पढ़कर ही पं. मुरारीलाल, पं. भोजदत्त, मेहता जैमिनि, ला. गणेशदत्त, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं. रामचन्द्र देहलवी शास्त्रार्थ समर के सेनानी बनकर मैदान में उतर पड़े। श्रीयुत् यशवन्त जी और प्रिय श्री लक्ष्मण 'जिज्ञासु' जी के धर्मप्रेमी तरङ्गित हृदय में जब धर्मवीर पं. लेखराम की श्रद्धा भक्ति ने जोश मारा तो ईश्वर के भरोसे दोनों ने इस ग्रन्थ संग्रह के प्रकाशन की ठान ली। इस सेवक को सम्पादन का दायित्व सौंपकर दोनों ने नवयुग के चमत्कारी धर्मवीर जी से कुछ मार्गदर्शन चाहा। डॉ. धर्मवीर ने झट से इस परियोजना को सभा के लिये हथिया लिया। श्रीमान् डॉ. धर्मवीर जी के सङ्कल्प का समाचार हैदराबाद, कर्नाटक व अमेरिका तक फैल गया। आर्य युवकों में उत्साह का संचार हुआ और धर्मवीर जी का दु:खद परलोक गमन हो गया। इस वज्रपात ने सबके जोश को ठण्डा कर दिया।

तब सब ओर से इस विषय की पूछताछ इस सेवक से होने लगी। अब हम क्या उत्तर देते? इस ग्रन्थ संग्रह में फ़ारसी के सैंकड़ों ग्रन्थों के सहस्रों प्रमाण हैं। आर्यसमाज में अब इन पंक्तियों के लेखक के सिवा कोई फ़ारसी जानता ही नहीं। अब कार्य न हुआ तो भविष्य में क्या होगा? सभा मन्त्री ने साहसिक निर्णय लेकर इस सेवक को लेखनी उठाने की प्रेरणा दे दी।

कुल्लियात के अनुवाद व सम्पादन करने वाले पहले विद्वान् पूज्य पं. शान्तिप्रकाश जी, पं. जगत्कुमार शास्त्री जी तथा प्रूफ़ रीडर तीनों स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के शिष्य और जाने-माने विद्वान् तथा मुझसे कहीं अधिक योग्य थे। कार्य आरम्भ किया तो पहले के दो संस्करणों के आर-पार होकर जाना कि पंजाब सभा व स्वामी ओमानन्द जी ने इस ग्रन्थ संग्रह को छपवा तो दिया, परन्तु अपने शहीद शिरोमणि पं. लेखराम की ज्ञान-राशि को श्रद्धा से नहीं छापा। बस रस्म पूरी कर दी। एक तीसरा संस्करण अकस्मात् अशोक आर्य जी ने दिखाया। सार्वदेशिक वाला यह संस्करण काग़ज व मुद्रण आदि की दृष्टि से तो कुछ बढ़िया था, परन्तु जो अशुद्धियाँ घुस गईं उनको दूर करने के लिये तिनका तक न तोड़ा गया। यदि स्वामी ओमानन्द जी अथवा ला. रामगोपाल जी, श्रीमान् शरर जी की सेवाओं का लाभ उठाते तो यह कार्य तब शान से हो सकता था और अत्युत्तम होता। वैसे शास्त्रार्थ महारथी, सात भाषाओं के विद्वान् पं. त्रिलोकचन्द जी शास्त्री इस कार्य के लिये सबसे उपयुक्त विद्वान् साहित्यकार थे। उनकी ओर किसी का ध्यान ही न गया। ग्रन्थ दोष-रहित हो यह किसी ने भी चिन्ता नहीं की। पूज्य पं. शान्तिप्रकाश जी के तप व श्रम से खिलवाड़ किया गया। नवीनतम संस्करण से मिलान करने पर यह तथ्य सामने आयेगा।

फ़ारसी के प्राय: सब प्रमाणों के पण्डित जी ने अर्थ दे दिये। फ़ारसी के प्रमाण लगभग अत्यधिक अशुद्ध छपते रहे। दो-दो तीन शब्दों को संयुक्त शब्द बनाकर निरर्थक बना दिया गया। परोपकारिणी सभा के इस संस्करण में भी कुछ न्यूनतायें व चूक तो रहेंगी ही। यह सम्पादक भी कोई सर्वज्ञ तो नहीं, परन्तु प्रात: से सायं तक लिखते-लिखते, मूल से मिलान करते-करते पीठ दुखने लग जाती थी, परन्तु हमने शहीद के प्रति तथा ऋषि के प्रति श्रद्धा-भक्ति का मूल्य कुछ तो चुका ही दिया है।

लेखक लेखराम, अनुसन्धानकर्त्ता लेखराम और

दार्शनिक पं. लेखराम ने मात्र १६ वर्ष में इतना ठोस कार्य कैसे कर दिखाया? वे विश्व-साहित्य का इतना व्यापक व गहन अध्ययन कैसे कर पाये? बाइबिल आदि पर जो प्रश्न पं. लेखराम जी ने उठाये वे पूरे विश्व में किसी को न सूझे। परोपकारिणी सभा के इस संस्करण से अब पूरा विश्व यह जानेगा। जिस ज्ञान राशि की महत्ता का गत साठ वर्षों में आर्यसमाज के नये-नये प्रवक्ताओं व लेखकों ने अवमूल्यन कर दिया था उसे सम्पादन करते हुए (Highlight) उजागर कर दिया गया है। आर्य जनता का कृतज्ञ हृदय यह जानकर गद्‌गद होगा कि हमारे माननीय विद्वान् श्रीयुत विरजानन्द जी दैवकरणि ने हमारी विनती स्वीकार कर संस्कृत के असंख्य प्रमाणों की अशुद्धियों को दूर करना स्वीकार कर लिया है। पूर्वजों का ऋण चुकाने का यश व गौरव उन्हें प्राप्त होगा।

जिस कार्य के करने के योग्य नहीं- किसी भी व्यक्ति को वह कार्य हाथ में नहीं लेना चाहिये जिसके वह योग्य नहीं। आर्यसमाज में अब अनेक व्यक्ति स्वयं को अन्तर्राष्ट्रिय वक्ता, प्रवक्ता, योगी, शास्त्रार्थ महारथी व इतिहासकार के रूप में स्थापित करने पर तुले हैं। अभी-अभी राजस्थान आर्यवीर दल की ओर से छपी एक पुस्तक देखकर मन दुःखी हुआ। आर्यवीर दल में श्री धर्मेन्द्र जी के अतिरिक्त इतिहास विषय पर कुछ लिखने व बोलने वाला कोई है ही नहीं। उस पुस्तक पर एक दृष्टि डाली तो मन को बड़ा दुःख हुआ। आर्यसमाज के गौरव, दक्षिण में बलिदानों की **अखण्ड परम्परा के जनक, वीर वेदप्रकाश को हुमनाबाद का बताया गया है।** यह लेखक का अक्षम्य अपराध है। यह एक ही चूक नहीं। न जाने लेखक को लिखने-पढ़ने का कितना अभ्यास है।

एक और खोजी लेखक गवेषक ने ला. लाजपतराय जी को श्रीकृष्ण, शिवाजी, मेज़नी, ऋषि दयानन्द की आत्मकथाओं का अनुवाद करने वाला लिखकर अपनी इतिहास पर पकड़ का हास्यास्पद परिचय दिया है। आर्यजन इस विषय में पूछते हैं। क्या कहा जावे? हारकर कहना पड़ता है। लाला जी के इस मूल ग्रन्थ का प्रथम संस्करण हमारे पास है। लाला जी की संस्था लोक सेवक मण्डल के एक प्रतिष्ठित सज्जन इन्हें देखने हमारे निवास पर आये। इतने पुराने वह भी प्रथम संस्करण देखकर गौरवान्वित हुये। गद्‌गद होकर उन्हें अपने माथे से लगा लिया।

एक प्रश्नकर्ता को हमने यह बताया कि दिल्ली के इस इतिहासकार ने जो खोज कर दिखाई है उसका तो श्री लाला लाजपतराय को भी कतई ज्ञान नहीं था। छत्रपति शिवाजी महाराज कहीं से फिर आ जावें तो वे भी यह जानकर चौंक पड़ेंगे कि आर्यसमाजी पत्रों के सम्पादकों की कृपा से उन्हें एक 'इतिहाकार' ने आत्मकथा लिखने वालों की पंक्ति में खड़ा कर दिया है। पं. गंगाप्रसाद जी चीफ जज और पं. इन्द्र जी के आर्यसमाज को इन निम्न स्तर के पत्रों व इतिहासकारों ने उपहास का विषय बना दिया है।

उपाध्याय जी पर एक पठनीय लेख- यद्यपि कुछ तो कार्याधिकता के कारण और कुछ बढ़ती आयु के साथ नेत्र-ज्योति की रक्षा के लिये अपवाद रूप में ही कुछ लेख व पुस्तकें देखने-पढ़ने का स्वभाव बना लिया है। जिस विषय पर लिखना होता है उन्हें तो देखना ही पढ़ता है। श्रीयुत् ज्वलन्त जी का पूज्य गुरुवर उपाध्याय जी पर एक पठनीय व प्रेरक लेख पढ़ने को मिला। शब्दशः तो न पढ़ सका, परन्तु लेख बहुत अच्छा लगा। उपाध्याय जी पर कितना भी लिखो, सब कुछ तो कोई भी नहीं लिख सकता। ज्वलन्त जी के लेख की पूरक सामग्री देने का लोभ संवरण नहीं किया जा सका। अंग्रेजी सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद सन् १९६४ नहीं १९४६ में प्रकाशित हुआ था। यह मुद्रण दोष रह गया। ४६ का ६४ बनना तो कोई अचम्भा नहीं। यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य पण्डित जी ने दक्षिण की प्रचार यात्राओं में रेल के डिब्बों में ही (अनुवाद का) लगभग पूरा कर दिया था।

पण्डित जी की आरम्भिक काल में पढ़ी एक अविस्मरणीय पुस्तक **'खालिक बारी'** का पण्डित जी ने उल्लेख किया है। कई वर्ष तक देशभर में उसकी खोज में भागदौड़ की। अन्ततः उ. प्र. के एक ग्राम से मिल ही गई। स्वामी सत्यप्रकाश जी और फिर दीक्षानन्द जी इस पुस्तक के दर्शन करने बारी-बारी अबोहर आये। तीन-चार घटनाओं को संकेत रूप में देना प्रेरणाप्रद रहेगा।

उपाध्याय जी ने शोलापुर में एक जैन विद्वान् मुनि से ईश्वर की सत्ता पर शास्त्रार्थ किया था। उसने उपाध्याय जी

के पाण्डित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

जब स्वराज्य संग्राम में भारत के एकमेव वैज्ञानिक डॉ. सत्यप्रकाश पर बम बनाने का अभियोग चला तो अपने सम्बन्धी सरकारी अधिकारी के साथ उपाध्याय जी ने कलेक्टर को कहा कि दोष मिथ्या हैं। उसने कहा, आप पुत्र से कहें कि मैं स्वराज्य संग्राम से दूर रहूंगा। यह लिखकर दे दे तो छोड़ देंगे। **पूज्य उपाध्याय जी ने पुत्र को ऐसा कहने से दो टूक ना कर दी।**

हैदराबाद सत्याग्रह की विजय का एक मुख्य कारण प्रचार विभाग था जिसमें चार महानुभावों में एक उपाध्याय जी थे। डॉ. हर्षवधन के पीएच.डी. के शोध प्रबन्ध में उसे सत्याग्रह की यह भी एक विशेषता लिखवाई। विश्वविद्यालय के इतिहासकारों ने इस खोज को मौलिक व महत्त्वपूर्ण माना।

हुतात्मा गणेशदास जी स्यालकोट की पुस्तक '**काग हंस परीक्षा**' की विद्यार्थी जीवन में आप पर गहरी छाप पड़ी। उपाध्याय जी ने इसका उल्लेख किया है। ला. गणेशदास सिद्धहस्त लेखक तथा विद्वान् थे। उनके जीवन से जिनको प्रेरणा प्राप्त हुई उनमें से एक इन पंक्तियों का लेखक भी है। उपाध्याय जी के जीवन पर लिखने वाले किसी भी लेखक ने उनके जीवन को नया मोड़ देने वाले लाला गणेशदास जी का कभी उल्लेख किया ही नहीं। इस लेखक ने उन्हीं के एक भावपूर्ण लेख के आधार पर उनके जीवन-चरित्र (गंगा-ज्ञान सागर चौथा भाग) तथा अनेक लेखों में इस प्रसंग को सप्रमाण सविस्तार दिया है।

आर्यसमाजियों की घातक भूल व अज्ञान- एक बार प्रसिद्ध विद्वान् स्व. शिवराज जी मौलवी फ़ाज़िल ने आर्यसमाज नया बाँस दिल्ली में बहुत भावनापूर्ण होकर इस लेखक को कहा, ''आपने आर्यसमाज के इतिहास की सुरक्षा व उसके प्रामाणिक लेखन के लिये इस्लाम की हदीस शैली को अपनाकर आर्यसमाज की बहुत सेवा की है। यह आपकी विशेष देन है। मुसलमानों ने गप्पें गढ़-गढ़कर हदीस शैली का अवमूल्यन कर दिया। आप सतर्क होकर लिखते हैं।''

तब यह भी पूछा, ''यह आपको कैसे सूझा?''

उन्हें बताया, ''विद्यार्थी जीवन में शास्त्रार्थ महारथी **महाशय चिरञ्जीलाल जी प्रेम** को सायं समय भ्रमणार्थ ले जा रहा था। तब इस विनीत को एक प्रश्न के उत्तर में आपने कहा कि पं. लेखराम जी के ऋषि जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आपने ऋषि-जीवन की एक-एक घटना को जैसी बताई गई, सुनाई गई, वैसे ही सुनाने वाले का नाम देकर उसको लेखबद्ध कर दिया।''

यह बात तत्काल मेरे हृदय पर अंकित हो गई। अभी एक दैनिक पत्र में एक पत्रकार ने डॉ. सीतारमय्या का नाम लेकर ऋषि के बारे में एक भ्रामक कथन परोस दिया। दोष उस लेखक का नहीं। दोषी अप्रमाणिक कहानियाँ गढ़कर चटपटा लिखने वाले आर्यसमाजियों का है। अब सम्पादक भी तो प्रेम जी, सन्तराम जी और अजमानी जी जैसे कहाँ हैं?

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को एक आन्दोलन में पंजाब कांग्रेस का डिक्टेटर नियत किया गया। वही जेल जाने वाले प्रत्येक जत्थे का डिक्टेटर नियुक्त करते थे। सरकार को पता नहीं चल रहा था कि इन जत्थों व जत्थेदारों की नियुक्ति कौन करता है? अन्ततः गोरी सरकार को यह भनक पड़ गई कि यह सत्याग्रह स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी चला रहे हैं।

सरकार ने श्रीमद्दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर पर छापा (Raid) मारा। एक-एक कागज़, पोथी पुस्तक को उलट-पुलट कर देखा गया। प्रमाण तो कुछ भी न मिला, परन्तु तथ्य यही था। सारे स्वराज्य संग्राम में केवल आर्यसमाज के ही मिशनरी कॉलेज की search (तलाशी) ली गई। ओवैसी के मदरसे, देवबन्द के दारुल उलूम, सिख मिशनरी कॉलेज, मिर्ज़ाइयों के, ईसाइयों के, काशी के, शंकराचार्यों के किसी मठ पर कभी छापा पड़ा?

इन आर्यसमाजी इतिहास पण्डितों ने कभी इस स्वर्णिम और विलक्षण घटना की चर्चा की? महाशय कृष्ण जी, ला. जगत नारायण जी, पं. नरेन्द्र जी, पं. धर्मपाल जी, श्री वीरेन्द्र जी आदि स्वतन्त्रता सेनानियों तथा श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज,पं. शान्तिप्रकाश जी की साक्षी से यह महत्त्वपूर्ण घटना यह लेखक कई बार लिख चुका है। १२४ वर्षीय स्वतन्त्रता सेनानी वेदज्ञ पं. सुधाकर जी चतुर्वेदी भी तो उस काल में वहीं महाराज के चरणों में रहे। अपने स्वर्णिम व प्रेरक इतिहास को उजागर न करना, उसकी रक्षा न करना,

यह पाप-कर्म है, ऋषि-द्रोह है यह बहुत बड़ा अपराध है। क्या कोई सुनेगा?

आर्यसमाज इसे इतिहास में स्थान दिलावे- देश के राजनीतिक दलों ने सन् १९४७ के पश्चात् जी भरकर ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज के साथ पक्षपातपूर्ण अन्याय व व्यवहार किया है। एक बार स्वामी विवेकानन्द जी पर एक कार्यक्रम में श्रीयुत् आडवाणी जी ने बहुत बल देकर कुछ ऐसा कहा कि यदि देशवासी अन्य देशों में जाकर व्यापार नहीं करेंगे तो यहाँ कंगाली ही होगी। ये बात आडवाणी जी के अनुसार सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द जी ने कही। कोई भी देश को ऐसी हितकर सीख दे वह आदरणीय व पूज्य है, परन्तु हमारे संघी भाई और आडवाणी जी जैसे नेता यह नहीं जानते कि सबसे पहले महर्षि दयानन्द जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में यह घोष किया था कि यदि देशवासी व विदेशी भी यहीं व्यापार करें, विदेशों में व्यापार को न फैलावें तो देश में निर्धनता न हो तो क्या हो। सत्यार्थप्रकाश में स्वामी विवेकानन्द जी के सार्वजनिक जीवन से बहुत पहले यह विचार दिया गया। वेतनभोगी इतिहासकारों व पक्षपाती नेताओं ने इसका महत्त्व न जाना।

पं. लेखराम जी ने ऋषि के पश्चात् अपने ग्रन्थों में बहुत निडरता से सन् १८५७ में और आगे-पीछे भी गोरों द्वारा भारतीयों की निर्मम हत्या की जी भर कर निन्दा की। किसने इस निडरता पर चार पंक्तियों की टिप्पणी की?

पं. लेखराम जी ने अपनी 'कुल्लियात' में पृष्ठ ३०६ पर अंग्रेजीराज की दण्ड प्रणाली में यूरोपियन के साथ पक्षपात का प्रश्न उठाकर असाधारण साहस का परिचय दिया। पादरियों को ललकारा कि मुख क्यों नहीं खोलते? फिर आगे लिखा कि अंग्रेज के न्यायालय में पक्षपात करके गोरे हत्यारे को मुक्त कर दिया जाता है। ऐसे उदाहरण एक दो नहीं प्रत्युत सैंकड़ों हैं। सैंकड़ों भारतीयों की हत्या गोरों ने की, परन्तु एक भी गोरे को फांसी पर न चढ़ाया गया।

शूरशिरोमणि पं. लेखराम देशभक्त को इतिहास में कभी स्थान मिलेगा क्या?

कौन सुनेगा? किसे सुनाऊँ? मेरी अपनी कथा पुरानी।

इधर भी ध्यान दो- कुछ मास पूर्व परोपकारी द्वारा आर्य जनता को बताया गया कि मैक्समूलर की अन्तिम पुस्तक हमें एक बार अवश्य देखनी चाहिये। इसके महत्त्वपूर्ण अंश हम परोपकारी में निरन्तर दे रहे हैं। गुणी पाठकों को बता दें कि श्री मैक्समूलर ने भी इसमें महर्षि को विष दिये जाने की चर्चा की है। आश्चर्य का विषय है कि हमारे इस काल के किसी वक्ता लेखक को न तो इस पुस्तक की जानकारी है और न ही उसमें वर्णित इस कथन का ज्ञान है। वैसे दिन-रात हमारे नैक-टाईधारी लोग मैक्समूलर की तोतारटन लगाये रखते हैं। महात्मा श्री मुंशीराम जी के एक लेख से हमारे मन में इस पुस्तक को पढ़ने की उत्सुकता जगी। श्री लक्ष्मण जी जिज्ञासु ने इसे हमारे लिये जैसे-कैसे खोज निकाला। आज इस समय इस पुस्तक के न मिलने से महर्षि के विषपान विषयक शब्द हम नहीं दे पा रहे।

आर्यसमाज का निरादर व अवमूल्यन- जून का उदयपुर का सत्यार्थ सौरभ देखकर एक दृष्टि डाली। श्री सीताराम जी गुप्त के लेख पर दृष्टि गई तो जानना चाहा कि इसमें है क्या? पढ़ना आरम्भ किया तो कुछ पता न चला कि इसका आर्यसमाज से क्या सम्बन्ध? पहला पृष्ठ पढ़कर पलटा तो माननीय श्री विष्णुप्रभाकर का नाम व चित्र देखकर सारा लेख पढ़ना पड़ा। लेखक जी ने अत्यन्त उदारता दिखाते हुये उन्हें प्रसिद्ध गांधीवादी लेखक बताया है। आर्यसमाज की तो लेख में कतई चर्चा नहीं। श्री विष्णु प्रभाकर जी किस कोटि के आर्यसमाजी विचारक थे यह इस पत्रिका के सम्पादक जी को क्या पता? उनके जीवन का निर्माण हिसार में हुआ। उनके धर्ममूर्ति मामा जी जिन्होंने उनको समाजसेवी, चरित्रवान्, धर्मात्मा और आर्य बनाया- वह मेरे बड़े स्नेही कृपालु थे। आज भी उनके परिवार से लेखक जुड़ा है। वियोगी हरि जी के ग्रन्थ 'हमारी परम्परा' में विष्णु प्रभाकर जी का आर्यसमाज के दर्शन, इतिहास व समाज सेवा पर मौलिक व पठनीय प्रेरक लेख उनकी ऋषि भक्ति व आर्यसमाज के प्रति उनकी श्रद्धा का ज्वलन्त प्रमाण है।

एक बार उनके दर्शनार्थ गया तो धर्मानुरागी विष्णुप्रभाकर जी ने उठने ही न दिया। आर्यसमाजी पत्रों के सम्पादक ही जब नहीं जानते तो आर्यसमाज के साथ अन्याय व अनर्थ का दोष किसे दें? इस पक्षपात को देखकर मन आहत होता है।

उपनिषद्-वर्णित त्रिवृत्करण

आचार्य उदयवीर शास्त्री

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि। (छा. ६, ३, ३)
तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकमकरोत्। (छा. ६, ३, ४)

प्राचीन वैदान्तिक विद्वानों में आचार्य द्रमिल का नाम बड़े आदरभाव से लिया जाता है। आचार्य के किसी ग्रन्थ से कतिपय सन्दर्भ वेदान्त-ब्रह्मसूत्र के रामानुजीय श्रीभाष्य में उद्धृत हैं। संभव है, ये सन्दर्भ छान्दोग्य उपनिषद् पर आचार्य के व्याख्याग्रन्थ से लिये गये हों। जगत् की सत्यता और असत्यता एवं उसकी रचना के विषय में आचार्य के क्या विचार हैं? इस पर उन सन्दर्भों से उपयुक्त प्रकाश पड़ता है। वहाँ इस विषय में यह भाव प्रकट किया गया है-

सोम[१] के अभाव में पूतीक (करंजवा) का ग्रहण कर लेना चाहिये, यह श्रुति द्वारा प्रकट किया गया है, क्योंकि पूतीक में 'सोम' के अंश विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार व्रीहि के अभाव में नीवार का उपयोग अनुष्ठानों में कर लिया जाता है, क्योंकि व्रीहि का सादृश्य नीवार (कोदों=कदन्न, जंगली चावल) में देखा जाता है। ऐसे ही शुक्ति का रजतभाव अथवा रजत का शुक्तिभाव श्रुतिबोधित है। यह सीप है, यह चाँदी है, ऐसा भेद का निर्देश उन-उन अंशों के आधिक्य के कारण होता है, मूलतत्त्व दोनों जगह समान रहते हैं, जिनके कारण विभिन्न कार्य-सीप और चाँदी आदि-में सादृश्य देखा जाता है। इस प्रतीति से भी कतिपय अंशों का उभयत्र समान होना निश्चित होता है।

कभी-कभी चक्षु आदि के दोष से शुक्ति-अंश छोड़कर केवल रजत-अंश गृहीत हो जाता है और रजतार्थी उसके लिए प्रवृत्त होता है, परन्तु जब चक्षु-दोष हट जाता है, तब शुक्ति-अंश गृहीत होने पर रजतार्थी की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। यह सब स्थिति स्पष्ट करती है कि सीप में चाँदी का भान हो जाना भी यथार्थ है। सीप का ज्ञान होने पर चाँदी की बाधा हो जाती है, यह बाध्य-बाधकभाव प्रतीयमान वस्तु में गृहीत अंशों के भूयस्त्व के कारण होता है, वस्तु के अयथार्थ होने के कारण नहीं। शुक्ति के अधिक भी अंश जब विकल हैं, प्रतीति में नहीं आते, तथा अत्यल्प भी रजत-अंश उभार में रहते हैं, तब वह वस्तु रजत प्रतीत होती है, अन्यथा सीप। वस्तु का मिथ्या या सत्य होना बाध्य-बाधकभाव का प्रयोजक नहीं है। सब वस्तु सर्वात्मक हैं, अर्थात् वस्तुमात्र के उपादान कारण त्रिगुण रूप में सर्वत्र समान हैं।

जब किसी एक वस्तु में अन्य वस्तु का ज्ञान होता है, तब हम उसे मिथ्या अथवा अयथार्थ ज्ञान कहते हैं तथा यह समझते हैं कि वस्तु वहाँ नहीं है, उसका ज्ञान हमें हो गया है, परन्तु इस विषय में आचार्य द्रमिल का कहना है कि जिस वस्तु का हमें ज्ञान हुआ है, उस वस्तु का अभाव वहाँ नहीं है। सीप में रजत के अंश हैं, उसी की प्रतीति वहाँ रजत-रूप में होती है। उसका कारण आचार्य बताता है, कि समस्त वस्तु जिन उपदान-तत्त्वों से किसी इकाई के रूप में परिणत होती हैं, वे समस्त इकाइयों के लिये मूलरूप में समान हैं। वे मूलरूप क्या हैं? इसका संक्षिप्त विवरण आचार्य ने इस प्रकार दिया है। वह लिखता है-

उपनिषद् (छा. ६, २, ३)में **'बहु स्याम्'** इस प्रकार संकल्पपूर्वक सर्गारम्भ का वर्णन जहाँ किया गया है, वहाँ उपनिषद् (छा. ६, ३, ३) में **'तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि'** यह कहा है। कार्य मात्र में यह त्रिवृत्करण प्रत्यक्ष से उपलब्ध होता है। अग्नि अथवा तेज का रोहित रूप, आपस् का शुक्ल, और पृथिवी का कृष्ण- यह त्रिरूपता अग्नि में है, उसके समान प्रत्येक वस्तु में ऐसा ही है, यह अर्थ स्पष्ट रूप से उपनिषद् में प्रतिपादित है। विष्णुपुराण (अंश १, अध्याय २, श्लोक ५२-५४) में सर्गारम्भ का ऐसा ही वर्णन उपलब्ध होता है। ये विभिन्न शक्ति सम्पन्न मूलतत्त्व परस्पर संघात (अन्योन्यमिथुन) हुए बिना सर्ग-रचना में समर्थ नहीं होते। एक-दूसरे का परस्पर मिथुन होने पर सृष्टि का आरम्भ संभव होता है।[२]

आचार्य द्रमिल यहाँ छान्दोग्य के उस प्रसंग का संकेत करते हैं, जहाँ उपनिषद् में सर्गारम्भ का वर्णन है। प्रलय के अनन्तर परब्रह्म परमात्मा का ईक्षण प्रकट हुआ-**'तदैक्षत: बहु स्यां प्रजायेय'** (छा. ६, २, ३) ब्रह्म ने विविध रूप में जगत् को बनाने का संकल्प किया और इसके लिये 'तेजस्-अप्-अन्न' को सक्रिय किया, प्रेरित किया। ये तीन देवता

जगत् के रूप में परिणत कर दिये गये। जीवात्माओं का इस जगत् में प्रवेश हुआ, परब्रह्म तत्त्व-मात्र में स्वतः अनुप्रविष्ट है।

ये तीन देवता 'तेजस्-अप्-अन्न' यथाक्रम 'रजस्-सत्त्व-तमस्' के प्रतीक हैं। यह तथ्य उपनिषद् के अगले चतुर्थ खण्ड के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है, जहाँ बताया है कि अग्नि की रचना में उक्त तीनों देवताओं का समावेश है। अग्नि का अग्निपन नहीं रहता, पर ये तीन रूप सत्य हैं। तात्पर्य है-विकार बनता-बिगड़ता रहता है, पर मूलतत्त्व सदा स्थिर रहते हैं, इसी कारण उन्हें 'सत्य' कहा गया है।

उपनिषद् के इस 'त्रिवृत्करण' के प्रसंग को आचार्य शङ्कर और उसके अनुवर्त्ती आचार्यों ने स्थूलभूतों के पञ्चीकरण का उपलक्षण मान कर एक नये मतवाद की स्थापना की है। उपनिषद् में यहाँ स्पष्ट त्रिगुण (सत्त्व-रजस्-तमस्) से जगदुत्पत्ति का वर्णन है।

आचार्य द्रमिल के प्रस्तुत उद्धृत लेखों में पञ्चीकरण का संकेतमात्र भी नहीं है, प्रत्युत इसके विपरीत स्पष्टरूप से जगत्सर्ग को त्रिगुणमूलक बताया है। इन मूलतत्त्वों से जो रचना होती है, उसको **महदाद्या विशेषान्ता** कहकर प्रस्तुत किया है[३]। यहाँ 'महत्' को मूलतत्त्वों की आद्य-रचना और 'विशेष' को अन्तिम रचना कहा है। सांख्ययोग में 'विशेष' पद स्थूल-भूतों के लिये परिभाषित है। यहाँ जगद्रचना का क्रम पूर्णरूप से सांख्य-प्रक्रिया के अनुसार है। इस रचना के मूल उपादान-तत्त्व 'सत्त्व-रजस्-तमस्' त्रिगुण हैं। इसी के अनुसार **''त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात्''** इस ब्रह्मसूत्र (३, १, २) के द्वारा सूत्रकार ने छान्दोग्य के उक्त प्रसंग को लक्ष्य कर त्रिगुण से जगत् की उत्पत्ति का विवरण प्रस्तुत किया है।

शाङ्कर विचार के अनुसार यदि तीन देवताओं को 'भूत' माना जाता है, तो उन्हें 'सत्य' नहीं कहा जा सकता, पर उपनिषद् में उनको स्पष्ट 'सत्य' कहा गया है। इसका सामञ्जस्य सांख्य-प्रक्रियानुसार संभव है, वहाँ त्रिगुण रूप तीन देवताओं को 'सत्य' माना गया है।

इससे स्पष्ट होता है, आचार्य शङ्कर से पूर्व उपनिषद् के इस प्रसंग की व्याख्या शाङ्कर व्याख्या से भिन्नरूप में की जाती थी, जो प्रसंग एवं यथार्थता के सर्वथा अनुकूल है। भूतों के पञ्चीकरण की अवैज्ञानिकता को अभिव्यक्त करने का यहाँ अवसर नहीं है।

यह निश्चित है कि आचार्य द्रमिल शङ्कर का पूर्ववर्त्ती है। आचार्य शङ्कर ने उपनिषदों के भाष्य में द्रमिल का एकाधिक बार उल्लेख किया है और उसको 'आगमवित्' कहकर स्मरण किया है।

टिप्पणी

१. सोमाभावे च पूतीकग्रहणं श्रुतिदर्शितम्।
सोमावयवसद्भावादिति न्यायविदो विदुः।।
ब्रीह्यभावे च नीवारग्रहणं ब्रीहिभावतः।
तदेव सदृशं तस्य यत्तद्द्रव्यैकदेशभाक्।।
शुक्त्यादे रजतादेश्च भावः श्रुत्यैव बोधितः।
रूप्यशुक्त्यादिनिर्देशभेदो भूयस्त्वहेतुकः।।
रूप्यादिसदृशश्चायं शुक्त्यादिरुपलभ्यते।
अतस्तस्यात्र सद्भावः प्रतीतेरपि निश्चितः।।
कुदाचिच्चक्षुरादेस्तु दोषाच्छुक्त्यंशवर्जितः।
रजतांशो गृहीतोऽतो रजतार्थी प्रवर्तते।।
दोषहानो तु शक्त्यंशे गृहीते तन्निवर्त्तते।
अतो यथार्थ रूप्यादिविज्ञानं शुक्तिकादिषु।।
बाध्यबाधकभावोऽपि भूयस्त्वेनोपपद्यते।
शुक्तिभूयस्त्ववैकल्य-साकल्यग्रहरूपतः।।

२. 'बहु स्या' मिति संकल्पपूर्वसृष्ट्याद्युपक्रमे।
'तासां त्रिवृतमेकैका' मिति श्रुत्यैव चोदितम्।।
त्रिवृत्करणमेवं हि प्रत्यक्षेणोपलभ्यते।
यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तदपामपि।।
शुक्लं कृष्णं पृथिव्याश्चेत्यग्नावेव त्रिरूपता।
श्रुत्यैव दर्शिता तस्मात् सर्वे सर्वत्र संगताः।।
पुराणे चैवमेवोक्तं वैष्णवे सृष्ट्युपक्रमे।
नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहितं विना।।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्त्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः।
समेत्यान्योन्यसंभोगं परस्परसमाश्रयाः।।
(वि. १,२,५२-५४)

३. महदाद्या विशेषान्ता ह्याण्ड मित्यादिना ततः।
सूत्रकारोऽपि भूतानां त्रिरूपत्वं तयाऽवदत्।।
त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वा दिति तेनाभिधाभिदा।।
इसकी तुलना करें- मैत्र्युपनिषद्, (६.१०) श्लोक में 'भूत' पद समस्त जगत् का संकेत करता है।

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ५ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

अच्छे लोकसेवक

तपेन्द्र वेदालंकार आई.ए.एस. (से. नि.)

विचारों के प्रचार-प्रसार के कई माध्यम हैं जिन पर विभिन्न सम्प्रदाय काम कर रहे हैं। बल व प्रलोभन को छोड़कर आर्यसमाज भी कई माध्यमों से वैदिक विचारों का प्रचार कर रहा है। विचारों का प्रचार-प्रसार समाज में अच्छे मूल्यों को स्थापित करने के लिए किया जाता है ताकि समाज सुखी रहे, खुशहाल रहे। उपदेशकों द्वारा, भजनोपदेशकों द्वारा, इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों से, लेखों व पुस्तकों से, मौखिक व लिखित कई प्रकार के माध्यम व्यक्ति को उसकी विचारधारा के बारे में सोचने का मौका देते हैं तथा सही-गलत समझकर गलत को छोड़ने व सही को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। विचार-परिवर्तन के ये तरीके लम्बे समय से प्रयोग में लाये जा रहे हैं। ८० के दशक में मैं हरियाणा के एक कॉलेज में प्राध्यापक था। छात्र कक्षाओं में कम आते, आज खेलना है, आज पढ़ने का मन नहीं है, पाठ्यक्रम तो थोड़ा सा बचा है, समय बहुत है, कहकर पढ़ने में आनाकानी करते तथा कॉलेज उन्हें कक्षा में उपस्थित होने को बाध्य भी नहीं कर रहा था। समझ में आया कि केवल समझाने से सही बात को मनवाया नहीं जा सकता, उसके लिए व्यक्ति के पास अधिकार भी होना चाहिये।

'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत तो प्रसिद्ध है ही। व्यक्तिश: भी आपने अनुभव किया होगा कि यदि किसी थाने का थानेदार रिश्वत नहीं लेता तो उस थाने में उसके समय में रिश्वत नहीं ली जाती, यदि ली जाती है तो कम मामलों में व चोरी-छिपे। यदि कोई जिला कलेक्टर भ्रष्टाचार के प्रति सख्त हो तो उसके जिले में भ्रष्टाचारियों पर पर्याप्त अंकुश लगता है। यदि कोई तहसीलदार किसानों की समस्याओं को सुलझाने की भावना वाला तहसील में आ जावे तो पटवारी, गिरदावर भी समस्या को आसानी से लम्बित नहीं रखते। यदि किसी पुलिस अधीक्षक की प्राथमिकता महिलाओं पर अत्याचार नहीं होने देने व कठोर कार्यवाही की हो तो अत्याचारी जिला छोड़कर भागने लगते हैं। इस प्रकार प्रत्येक छोटे या बड़े पद पर जो कर्मचारी, अधिकारी कार्य कर रहा है, उसके चरित्र व विचार का प्रभाव वहाँ की सारी प्रजा पर पड़ता है। अच्छे अधिकारी के आने पर प्रजा को सुख शान्ति मिलती है तथा बुरे अधिकारी के आने पर सुनवाई नहीं होती, परेशानी होती है।

ये कर्मचारी, अधिकारी समाज से ही आते हैं। समाज से इन्हें जो विचार विरासत में मिले हैं, उन्हीं को अपनाते हैं, वही इनकी प्राथमिकता होती है। शिक्षण-संस्थाएँ पाठ्यक्रम के माध्यम से कितने नैतिक विचार छात्र को दे रहे हैं, यह तो सबको मालूम है। नैतिक विचारों के लिए वहाँ स्थान नहीं है, प्राथमिकता तो है ही नहीं। रोजी-रोटी कमाने की मजबूरी ने या धन को ही कमाने, बढ़ाने की सनक ने परिवार द्वारा मिलने वाली नैतिक शिक्षा से भावी पीढ़ी को वञ्चित कर दिया है। अलग से नैतिक शिक्षा दिये जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, उसका स्थान तो ट्यूशन ले चुके हैं। व्यक्ति के स्वयं के चरित्र से शिक्षा मिले नहीं, परिवार शिक्षा दे नहीं, शिक्षा-संस्थायें केवल शब्द ज्ञान तक सीमित हो जायें तो ऐसे में नैतिक संस्थाओं का ही दायित्व हो जाता है कि वे नयी पीढ़ी का सम्यक् मार्गदर्शन करें। यहीं से आर्यसमाज व उसकी विभिन्न संस्थाओं का रोल शुरू होता है।

आर्यसमाज के उत्सवों द्वारा, प्रवचनों द्वारा, अन्य साधनों द्वारा जनसाधारण के लिए प्रचार का कार्य तो आवश्यक है ही, नयी पीढ़ी को केन्द्र मानकर उसके सुधार का लक्ष्यबद्ध प्रचार, आने वाले समाज को समुन्नत बनाने का प्रबल उपाय है। छोटे विद्यालयों के बच्चों के अनुकूल सरल, सहज भाषा व अन्य हृदयग्राही तरीके अपनाने की तो जरूरत है ही, पर कॉलेज जाने योग्य युवाओं के जीवन में मानवीय मूल्यों को संजोने के लिए, तर्कसम्मत माध्यम से लाभ-हानि की विवेचना सहित प्रचार-प्रसार की आवश्यकता की प्राथमिकता है। ये युवा ही देश का भविष्य होंगे। इन्हें संवारने से ही देश संवरेगा, इनके बिगड़ने से ही देश बिगड़ेगा। भारतीय संस्कृति के संस्कार, चाहे थोड़े धूमिल ही सही, अभी हमारे युवाओं में

विद्यमान हैं। केवल उन संस्कारों को सींचने की, पल्लवित करने की, जागृत करने की आवश्यकता है। ये संस्कारवान् युवा जिस क्षेत्र में जायेंगे, अपनी अलग छाप छोड़ेंगे, अपने चरित्र से जनसाधारण को प्रभावित करेंगे तथा आने वाले समाज को सुसंस्कारित व चरित्रवान् बनायेंगे। आपने भी अनुभव किया होगा कि युवा पीढ़ी समझना-सीखना चाहती है, तीव्रता से सीखती है, परन्तु सबको सीखने के, समझने के अवसर नहीं मिल पा रहे और यह दोष नयी पीढ़ी का न होकर पुरानी पीढ़ी का है, हमारा है, जो अपनी दुनियादारी में फँसकर अपने कर्त्तव्यपालन में पिछड़ गये, पिछड़ रहे हैं। आर्यसमाज के संन्यासी, उपदेशक व्यक्तिश: कार्य कर रहे हैं, जैसे स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज ने सीकर जिले के विद्यालयों, कॉलेजों में धर्म के सिद्धान्तों की शिक्षा का उल्लेखनीय कार्य किया है, परन्तु योजनाबद्ध व संस्थागत प्रयासों की महती आवश्यकता है।

संस्कारवान् युवा-निर्माण फलत: संस्कारित समाज के निर्माण के लिए आर्यसमाज की संस्थाएँ आगे आकर ऐसे संस्कारी युवकों को तैयार कर सकती हैं जो प्रशासनिक क्षेत्रों में जाकर स्वयं के उज्ज्वल चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करें तथा अपने कार्यक्षेत्र में कानून सम्मत तरीके से अत्याचार को, कदाचार को, भ्रष्टाचार को बढ़ने न दें, उनका खात्मा करने का निश्चय करें तथा उसके लिए पूरी तत्परता से कार्य करें। राजनीति को कितना ठीक कर सकते हैं, यह विषय छोड़ ही दें, पर यह स्पष्ट है कि आज की राजनीति के निर्णय वोट आधारित होते हैं। पहले कार्यकर्ता नेता बनकर प्रतिनिधि बनते थे, आज प्रतिनिधि के लिए नेता बनना या नेता के लिए कार्यकर्ता बनना जरूरी नहीं। ऐसी स्थिति में प्रशासनिक अधिकारियों व कर्मचारियों पर यह जिम्मेदारी आ जाती है कि वे नियम-विरुद्ध कामों में सहयोगी न बनें बल्कि उसे रोकने के लिए कानूनसम्मत स्पष्ट मत रखें। यह तब ही होगा जब अधिकारियों व कर्मचारियों में उच्च स्तर की नैतिकता होगी। इसी को बढ़ाने का कार्य आर्यसमाज की संस्थाओं को हाथ में लेना चाहिये।

भारतीय प्रशासनिक सेवा में आने के बाद मैंने गुरुकुल काँगड़ी के कुलपति जी को यह प्रस्ताव रखा था कि गुरुकुल में प्रशासनिक सेवाओं की तैयारी के लिए अवसर उपलब्ध कराया जावे। विषयों के विद्वान् भी गुरुकुल के पास हैं, नैतिक शिक्षक भी उपलब्ध हैं, स्थान भी है, विषय-विशेषज्ञ भी मिल जावेंगे। मैंने भी समय-समय पर मेरी सेवाएँ देने का प्रस्ताव किया था, परन्तु उन्हें न करना था, न उन्होंने किया। १९८० से आज तक गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा मुझे कभी एक बार भी अपने किसी उत्सव, महोत्सव तक का सामान्य निमन्त्रण-पत्र तक नहीं भेजा गया। जबकि लोग कहते हैं कि गुरुकुल का एकमात्र स्नातक हूँ जो भारतीय प्रशासनिक सेवा में था। मैं तो जब भी हरिद्वार जाता हूँ, कुलभूमि की रज को नमन करना नहीं भूलता। वर्षों बाद पुन: सक्षम आर्य संस्थाओं, सार्वदेशिक सभा, प्रतिनिधि सभाओं, गुरुकुलों आदि के समक्ष वही प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहा हूँ। यदि अधिकारी-कर्मचारी-तन्त्र सुधरेगा तो सामान्य व्यक्ति की कठिनाइयाँ कम होंगी-समाज सुधरेगा फलत: सुखी होगा।

संस्थाओं को कॉलेज स्तर के लिए कार्यक्रम बनाने चाहियें, जिससे युवाओं में चरित्र-निर्माण की शिक्षा दी जा सके। आर्यसमाज की जो शिक्षण-संस्थाएँ चल रही हैं वे अतिरिक्त समय लगाकर अपने छात्रों को प्रशासनिक सेवाओं की तैयारी करावें। डी.ए.वी. संस्थाएँ ही प्रतिवर्ष सैकड़ों युवकों को प्रशासनिक सेवाओं के लिए तैयार कर सकती हैं। प्रतिनिधि सभाएँ स्वयं राज्य स्तर पर प्रशासनिक सेवाओं की तैयारी के लिए अवसर प्रदान करें व अन्य संस्थाओं को आर्थिक सहयोग एवं विद्वानों-प्रचारकों का सहयोग उपलब्ध करायें। जिला स्तर व राज्य स्तर पर प्रशासनिक सेवाओं में जाने के इच्छुक युवाओं को चिह्नित किया जावे तथा उनको प्रेरित किया जावे। क्योंकि कहाँ कही कौन सी बात कब हृदय की गहराइयों में उतरकर अपना असर दिखा दे, इसका पता नहीं चलता। मैं कोटा में संभागीय आयुक्त पद पर पदस्थापित था। एक दिन एक युवक आया, मैंने कार्य पूछा, बोला-कोई कार्य नहीं, आपसे मिलने आया हूँ। जब आप जिलाधीश कोटा थे, तब हमारे विद्यालय में आये थे, आपकी बात से प्रभावित हुआ, तैयारी की, आज उच्च पद पर नियुक्त हूँ।

गुरुकुल के विद्यार्थियों से एक बात कहना चाहता हूँ।

आप ब्रह्मचारी हैं, आप अनुशासन में रहते हैं, आप व्यायाम करते हैं, स्वस्थ हैं, आपका भोजन सात्त्विक है, आप की अध्ययन-क्षमता खूब है, आप भी प्रशासनिक सेवाओं के बारे में क्यों नहीं सोचते? मैं भारतीय प्रशासनिक सेवा की प्रारम्भिक परीक्षा देने चण्डीगढ़ गया हुआ था, ज्येष्ठ भ्राता डॉ. सुरेन्द्र कुमार शास्त्री, प्रोफेसर डी.ए.वी. कॉलेज चण्डीगढ़ के घर ठहरा हुआ था। मेरे एक गुरुकुल के मित्र मिलने आये, मैंने उन्हें प्रशासनिक सेवाओं के लिए उकसाया। वे बोले- मुझे अंग्रेजी नहीं आती। मैंने कहा तुम छः माह में अष्टाध्यायी रट सकते हो तो अंग्रेजी क्या चीज है! वे भारतीय पुलिस सेवा में गये। सोचिये इस अधिकारी का कार्य कितना विशिष्ट रहा होगा? निश्चित रूप से अन्यों से कहीं अधिक नैतिक व समाज-हितकारी भी।

वैदिक धर्म के अनेकों सिद्धान्त हैं जो कभी अन्य सम्प्रदाय के लोगों को स्वीकार नहीं थे, लेकिन आज व्यवहार में उनकी स्वीकृति है। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का अर्थ भी विश्व को आर्य बनाना है-श्रेष्ठ बनाना है। आर्यसमाजी इसलिए बनाने हैं कि आर्य बना सकें, वैदिक सिद्धान्तों को फैला सकें। पर लक्ष्य तो आर्य बनना व बनाना ही है। अत: जो संस्थाएँ प्रशासनिक सेवाओं के लिए तैयारी कराती हैं, उनसे सम्पर्क कर वहाँ अध्ययनरत युवकों को नैतिक शिक्षा के सर्वमान्य सिद्धान्तों से अवगत कराया जा सकता है। प्रान्तीय प्रशासनिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए प्रत्येक प्रदेश में संस्थान बने हुए हैं, वहाँ प्रशिक्षण कार्यक्रम चलते रहते हैं, उनमें जाकर हमारे अच्छे वक्ता अपनी बात कह सकते हैं। अखिल भारतीय सेवाओं के अलग-अलग प्रान्तों में प्रशिक्षण संस्थान हैं, उस प्रान्त की सभाएँ या सार्वदेशिक सभा वहाँ जाकर अपना प्रस्तुतिकरण दे सकती हैं। ऐसा संभव है, जयपुर के लोक प्रशासन संस्थान में स्वामी सत्यबोध जी महाराज को अधिकारियों ने घण्टों सुना है।

अत: सुझाव है कि हमारी सक्षम समाजें, सार्वदेशिक सभा, प्रादेशिक प्रतिनिधि सभाएँ, गुरुकुल, शिक्षण संस्थाएँ आदि अन्य संस्थाओं से मिलकर योजनाबद्ध व चरणबद्ध कार्यक्रम बनाकर लक्ष्य निर्धारित कर भावी अधिकारियों व कर्मचारियों में नैतिक शिक्षण कार्य की क्रियान्विति करें। संसाधनों की आर्यसमाज के पास कमी नहीं है। एक बात ध्यान रखने की है कि हम किसी अन्य के साथ इतने न मिल जावें कि हमारी पहचान अन्यों के रूप में होने लगे। हम आर्यसमाजी अपनी पहचान अक्षुण्ण बनाये रखें।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अत: व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६

समय- ९:००-१०:००प्रात:, १२:३०-१:३० मध्याह्न

पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

योग-साधना शिविर (१७ से २४ जून २०१८) के अनुभव

१. परिचय- मेरा नाम प्रकाशवती है। मैं सोनीपत (हरियाणा) से हूँ। मैं पिछले ८ वर्ष से शिविर में आ रही हूँ। यह मेरा नौवाँ शिविर है। मैं अपने कुछ विचार इस शिविर के विषय में लिख रही हूँ।

पिछले वर्ष शिविर में आए, कुछ सूना-सूना सा लगा। धर्मवीर जी, जो ऋषि उद्यान की रीढ़ थे। मिलनसार, इतने अच्छे वक्ता कि उनके हवन-यज्ञ के बाद का बोला हुआ मैं हर वर्ष कापी में लिखती थी। जब तक वे बोलते, पत्ता हिलने तक की आवाज नहीं सुनाई देती थी। उनके गुण इतने कि मैं लिख नहीं सकती।

पिछले वर्ष उनकी बहुत ज्यादा कमी महसूस हुई। लेकिन इस वर्ष अच्छे-अच्छे विद्वान् हैं, योग के विषय में, ध्यान लगवाने में हमारा बहुत अच्छा ज्ञान करवा रहे हैं। इन विद्वानों से हम सभी ने बहुत लाभ प्राप्त किया।

शिविर में प्रबन्ध बहुत अच्छा है। सभी कार्य समय पर नियमपूर्वक सम्पन्न हुए।

२. परिचय- मेरा नाम विपिन कुमार है। मैं दिल्ली का रहने वाला हूँ। मैं सॉफ्टवेयर इन्जीनियर हूँ। वैसे मैं किसी आर्यसमाज से नहीं जुड़ा हूँ पर आर्यसमाज, विशेषत: स्वामी दयानन्द जी से बहुत प्रभावित हूँ।

अनुभव- ये मेरा चौथा शिविर है। लगभग इन चार वर्षों में योग से मुझे बहुत लाभ हुआ है।

१. मेरी कार्य-क्षमता कई गुना बढ़ी है।

२. तेरा तनाव लगभग समाप्त हो गया है।

३. मेरा क्रोध काफी कम हुआ है।

४. मुझ में असुरक्षता का भाव लगभग खत्म हुआ है और निर्भयता जगी है।

५. मुझ में प्रेमभाव की वृद्धि हुई है और द्वेष लगभग खत्म हो गया है।

६. मैं अपना काम बहुत ईमानदारी से करने में सक्षम हुआ हूँ।

७. योग से मुझे धैर्य की प्राप्ति हुई है।

इस शिविर के लाभ-

१. प्राणायाम की सही विधि का आभास होना तथा उसका अभ्यास चालू करना।

२. ध्यान/जप के बारे में और अच्छे से पता चलना।

३. ओ३म् के सही उच्चारण का ज्ञान होना।

४. आसन साधने की विधि का पता चलना।

ऋषि दयानन्द ने कहा था

विद्वान् एकमत हो प्रीति से वर्तें

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़, सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें-वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों (साधारण जनों) में विरोध बढ़कर अनेकविध दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

(स. प्र. भू.)

अमर शहीद आर्यमुसाफिर पं. लेखराम

वेदारी लाल आर्य

पं. लेखराम का जन्म ८ चैत्र सम्वत् १९१५ को अविभाजित पंजाब के जिला जेहलम की तहसील चकबाल के ग्राम सैय्यदपुर में महता तारासिंह के गृह में हुआ था। ६ वर्ष की आयु में इन्हें उर्दू, फारसी पढ़ने के लिए मदरसे में भेजा गया। कारण, उस समय हिन्दुओं की पृथक् से कोई पाठशाला नहीं होती थी। आप बहुत ही होशियार थे। फारसी के कठिनतम पाठों को भी कभी दुबारा नहीं पूछा। इनकी हाजिरजवाबी से परीक्षक बहुत प्रसन्न रहते थे।

२१ दिसम्बर १८७५ को लेखराम के चाचा गण्डाराम ने १७ वर्ष की आयु में इन्हें पेशावर पुलिस में भर्ती करा दिया। उन्नति करते-करते वे सार्जेन्ट के पद पर पहुँच गए। एक सिख सिपाही के सत्संग ने उन्हें परमात्मा की उपासना का अभ्यास करा दिया। वे ब्रह्ममुहूर्त में स्नान कर उपासना में बैठ जाते थे। गीता पर किसी का भाष्य पढ़ते हुए इन्हें मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के ग्रन्थों को देखने की उत्कण्ठा हुई। तत्काल ग्रन्थ मँगा लिया। इन ग्रन्थों को पढ़कर इन्हें ऋषि दयानन्द के नाम और काम का पता लगा। समाचार-पत्रों में उन दिनों ऋषि दयानन्द की धूम मची हुई थी। इसी के परिणामस्वरूप लेखराम जी ने सम्वत् १९३७ के अन्तिम भाग में पेशावर में माई रन्जों की धर्मशाला में जहाँ वे रहते थे, आर्यसमाज की स्थापना कर दी।

हृदय में उत्पन्न कुछ संशयों के समाधान हेतु और ऋषि दयानन्द का आशीर्वाद लेने हेतु ५ मई १८८० को एक माह का अवकाश लेकर ११ मई को ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ अजमेर चल दिए। १७ मई को सेठ फतहमल की वाटिका में पहुँचकर ऋषि के दर्शन किए। उनकी अनुमति से उन्होंने दस प्रश्न पूछे थे। जिनमें से बाद में उन्हें तीन ही स्मरण रह गए। अजमेर से वापस आकर दिन-रात इन्हें धर्म-प्रचार की धुन रहने लगी। आर्यसमाज पेशावर की ओर से उर्दू का मासिक पत्र 'धर्मोपदेश' प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया और इसके सम्पादन तथा आर्थिक स्थिति का भार भी स्वयं ही वहन किया।

जून सन् १८८४ ई. में सार्जेन्ट लेखराम को दफ्तर पुलिस में बदल दिया गया। २४ सितम्बर १८८४ को त्यागपत्र देकर मनुष्यों के दासत्व से मुक्त होकर लेखराम अब पण्डित लेखराम बन गए और वैदिक धर्म के अथक समर्पित सेवक बन गए।

३० अक्टूबर १८८३ को ऋषि दयानन्द ने निर्वाण प्राप्त किया। इस घटना ने पं. लेखराम को विचलित कर दिया। सारे विश्व को वैदिक धर्म के झण्डे तले लाने का अपना ही कर्त्तव्य समझ लेखराम धर्मवीर का पद प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हुए। आर्य जाति का कोई भी व्यक्ति यदि ईसाई अथवा मुसलमान हो तो उसे बचाने का, आर्यसमाज पर विपक्षी के आक्षेप का उत्तर देने का काम इनका था। सर्वप्रथम जम्मू के ठाकुरदास नामक हिन्दू को मुसलमान बनने से बचाने के लिए वे तीन-चार बार गए और अन्ततः उसे विधर्मी होने से बचाने में सफल रहे।

सन् १८८६ के आरम्भ में पं. लेखराम की योग्यता की धूम मच गई। 'तकजीव बुराहीन अहमदिया' के अब तक अप्रकाशित रहते ही उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ दूर-दूर तक पहुँच चुकी थीं। लेखराम ने इसी वर्ष मिर्जा की किताब 'सुरमा चरम आरिया' का जवाब 'नुस्खा सख्त अहमदिया' लिखा। इसके अतिरिक्त पादरी खड़गसिंह के छः व्याख्यानों के उत्तर भी लिखकर प्रकाशित किए और भी बहुत छोटी-छोटी पुस्तकें अवैदिक मतों के खण्डन में प्रकाशित कीं। प्रचार का कार्य भी साथ-साथ चल रहा था। सन् १८८७ के प्रारम्भ में लेखराम को 'आर्य गजट' फिरोजपुर का सम्पादक बना दिया गया।

ऋषि दयानन्द का अवसान हुए साढ़े चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे, आर्य जनता उनके जीवन-चरित्र की माँग कर रही थी। मुल्तान की आर्यसमाज की सम्मत्यानुसार पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने १ जुलाई १८८८ ई. के अधिवेशन में निश्चय किया कि ऋषि के जीवनवृत का अन्वेषण करने के लिए पं. लेखराम को नियुक्त किया जाए। नवम्बर १८८८ में 'आर्य गजट' का सम्पादन छोड़कर पं. लेखराम

ऋषि का जीवनवृत्त खोजने हेतु 'आर्य मुसाफिर' बन गए। ऋषि जीवन का अन्वेषण उन्होंने लाहौर से प्रारम्भ किया। धर्म-प्रचार भी साथ-साथ होता रहा। लाहौर से जालन्धर, मथुरा होते हुए अजमेर पहुँचे, अजमेर में मुसलमानों ने बड़ा बखेड़ा मचा रखा था। उनके जोश को ठण्डा कर यहाँ के आर्यों से 'वैदिक विजय मासिक पत्र' प्रकाशित कराया। लेखरामजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'जिहाद' इसी में क्रमशः प्रकाशित हुई थी। यहाँ से नसीराबाद में शास्त्रार्थ करके घर होकर मेरठ पहुँचे। यहाँ 'नियोग वेवगान' छपवाया। अन्वेषण के क्रम में पंजाब और संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) का भ्रमण करने प्रयाग पहुँचे। ऋषि का स्थापित किया हुआ वैदिक यन्त्रालय उन दिनों यहीं था। पं. भीमसेन और पं. ज्वालादत्त इसमें कार्य करते थे। पं. लेखराम एक मास तक ऋषि का पत्र-व्यवहार देखते रहे, इसी समय कुछ प्रूफ देखते हुए पं. लेखराम को पण्डितों की पोपलीला का पता चला। उन्होंने वेदभाष्य का एक छपा हुआ अंक जलवा दिया और उसे पुनः संशोधन कर छपवाया। इनकी हलचल के परिणामस्वरूप वेदभाष्य के अवलोकन का भार कुछ प्रसिद्ध आर्यपुरुषों पर डाला गया।

यहाँ से पं. लेखराम मिर्जापुर, काशी होकर दानापुर १७ जनवरी १८९१ को पहुँचे। यहाँ आर्यसमाज के नाम पंडित जी के घर से तार आया कि पण्डित जी हैं या नहीं, क्योंकि किसी शत्रु ने पण्डित जी के घर पर उनकी मृत्यु की सूचना भेज दी थी। तार का उत्तर दे दिया गया। यहाँ लेखराम जी ने खुदाबख्श लाइब्रेरी में से ४० पारे का कुरान देखा और उसके पिछले १० पारे में से कुछ नोट किया। खड़गविलास प्रेस से 'कवि वचन सुधा' की फाइल लेकर ऋषि के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कुछ नोट किया। यहाँ के तत्कालीन मन्त्री डॉ. मुन्नीलाल शाह ने जो पत्र स्वामी श्रद्धानन्द जी को लिखा था, उससे ज्ञात होता है कि पण्डित लेखराम का विचार सत्यार्थ प्रकाश का उर्दू अनुवाद करने का था। वे स्वतन्त्र रूप से अरब, मिस्र, अफगानिस्तान आदि देशों में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहते थे।

यहाँ से कलकत्ता होकर पं. जी कुम्भ पर हरिद्वार पहुँचे। हरिद्वार से लाहौर होकर वैशाख १९४८ संवत् में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर हैदराबाद (सिन्ध) के एक रईस परिवार को मुसलमान होने से बचाया। इन्हीं दिनों उन्होंने 'क्रिश्चियन मत दर्पण' की तैयारी शुरू कर दी थी तथा 'तारीख ए दुनिया' तैयार कर लिया था।

साधु केशवानन्द के साथ शास्त्रार्थ करने आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने पं. लेखराम को दिसम्बर १८९१ में सिरमौर राज्य के नाहन भेजा। यहाँ के राजा के समक्ष केशवानन्द से लेखराम का शास्त्रार्थ हुआ। लेखराम के यहाँ चार व्याख्यान हुए। २१ मार्च सन् १८९२ को मियानी जिला शाहपुर में आर्यसमाज की स्थापना करके ऋषि दयानन्द के जीवन के अनुसन्धान में लेखराम राजपुताना की दिशा में चल दिए।

बूंदी राज्य में ब्रह्मचारी नित्यानन्द और स्वामी विश्वेश्वरानन्द के शास्त्रार्थ की धूम मची थी। आर्यसमाज ने उनकी सहायता के लिए लेखराम को भेजा। किसी ने रियासत होने के कारण अनिष्ट की आशंका प्रकट की, परन्तु पण्डित जी सिंह के समान गर्जना करते हुए बूंदी पहुँचे, परन्तु किसी कारणवश यहाँ शास्त्रार्थ नहीं हो सका। सन् १८९२ के अक्टूबर, नवम्बर के मास के महीने उन्होंने ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि की खोज में बिताए।

५ अगस्त सन् १८९३ को लेखराम जोधपुर पहुँचे। जोधपुर के महाराजा प्रतापसिंह वैदिकधर्म के अनुयायी तथा ऋषि दयानन्द के परम भक्त थे, परन्तु राजपूतों की वीरता हेतु वे मांस-भक्षण आवश्यक मानते थे, परन्तु लेखराम ने तर्कसंगत वार्त्ता कर महाराज की इस शंका को निर्मूल कर दिया।

इन्हीं दिनों अमेरिका के शिकागो नगर में प्रदर्शनी की तैयारियाँ हो रही थीं। आर्यसमाज की ओर से कोई विशेष प्रतिनिधि भेजने पर विचार हो रहा था। पं. लेखराम ने एक अपील प्रकाशित कर मार्गव्यय और एक अंग्रेजी के सुयोग्य विद्वान् की सेवा माँगी, यद्यपि उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली, परन्तु इससे उनका धर्म के प्रति उत्कृष्ट प्रेम सिद्ध होता है। पण्डित लेखराम १५ मई १८९५ को लाहौर से अपनी पत्नी को लेकर अपने घर पहुँचे। १८ मई को प्रातःकाल उनके घर पुत्र का जन्म हुआ। पण्डित जी ने उसका नामकरण पूर्ण वैदिक रीति से किया। २२ मई को पुनः अपनी यात्रा पर चल दिए। १२ जून १८९५ को उनके

लघु भ्राता तोताराम का देहावसान हो गया। इसी के कुछ दिनों पश्चात् उनके पिताजी की भी मृत्यु हो गई, परन्तु धर्म-प्रचार और ऋषि दयानन्द के जीवनवृत्त में संलग्न लेखराम अपने घर नहीं पहुँचे। जब उनका पुत्र रोग-शैय्या पर पड़ा था, तब ये शिमला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान दे रहे थे। २६ अगस्त को जालन्धर वापस आए। पुत्र की चिकित्सा हो रही थी। इसी मध्य उनके पुत्र की मृत्यु हो गई थी, परन्तु पण्डित जी के मुखमण्डल पर किसी ने भी विषाद की रेखाएँ नहीं देखीं।

पण्डित जी द्वारा शुद्धि का चक्र चलाया जा रहा था ताकि भटके हिन्दू भाइयों को, जो किसी कारणवश मुसलमान बन गए थे, पुनः वैदिक धर्म में वापिस ला सकें। इसके कारण मुसलमान उनसे शत्रुता रखने लगे थे और वे पण्डित जी की किसी न किसी प्रकार हत्या करना चाहते थे।

फरवरी सन १८९७ के मध्य एक काला, गठे हुए बदन का भयानक नाटा युवक पण्डित लेखराम का पता पूछता हुआ उनके निवासस्थान पर पहुँचा और निवेदन किया कि वह दो वर्ष पूर्व हिन्दू था अब मुसलमान हो चुका है तथा पुनः वैदिक धर्म में दीक्षित होना चाहता है। पण्डित जी इसके लिए सदा तत्पर रहते थे, उन्होंने उसे बड़े प्रेम से बैठाया और आश्वस्त किया कि वे उसे शुद्ध कर लेंगे। पण्डित जी ने उसका अन्य विवरण जानने का प्रयास नहीं किया।

पण्डित जी ६ मार्च १८९७ को शाम ६ बजे अपने घर के खुले बरामदे में चारपाई पर बैठकर ऋषि के जीवनवृत्त की संकलित सामग्री को सिलसिलेवार लगा रहे थे तभी वह घातक नवयुवक उनकी बाईं ओर की कुर्सी पर बैठ गया। माताजी रसोई में थीं, उनकी पत्नी दूसरे कक्ष में पढ़ रही थीं। पण्डित जी उस समय ऋषि दयानन्द की मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे। पत्र वहीं रख दिए और चारपाई पर जिधर घातक बैठा था उधर उतरकर आँख बन्द कर दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर अंगड़ाई लेने लगे। घातक इसी प्रकार की मुद्रा की तलाश में था। उसने लेखराम जी के पेट में छुरा घोंपकर घुमा दिया, जिससे उनकी आँतें बाहर निकल आईं। पण्डित जी इससे किंचितमात्र भी विचलित नहीं हुए और किसी प्रकार का शोर भी नहीं मचाया, वरन् धैर्य का परिचय दिया। पण्डित जी ने अपने बायें हाथ से अंतड़ियाँ सँभाली और दायें से घातक से लड़ते-भिड़ते सीढ़ी तक जा पहुँचे और उसके हाथ से छुरी छीन ली। इतने में उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी जी बाहर आईं और धर्मवीर को घातक के संभावित दूसरे वार से बचा लिया। धर्मवीर की माता ने घातक के दोनों हाथ पकड़ लिए, परन्तु घातक ने उनके हाथ से बेलन लेकर उनको भी दो तीन चोटें लगाई और हाथ छुड़ाकर भागने में सफल रहा।

पण्डित जी को शीघ्र ही अस्पताल पहुँचाया गया। छुरी लगने के पौने दो घंटे बाद सिविल सर्जन डॉ. पैरी साहब आए और दो घंटे तक कटी हुई आंतों को सिलते रहे। उन्हें आश्चर्य था कि इतनी देर तक इतनी अधिक मात्रा में रक्त निकलने पर भी यह जीवित कैसे हैं? पण्डित जी इस मध्य गायत्री मन्त्र और 'ओ३म् विश्वानि देव' मन्त्र का जाप करते रहे।

पण्डित जी रात्रि डेढ़ बजे तक सचेत रहे। इस समय उन्हें न तो घरवालों की चिन्ता थी और न मृत्यु का भय। केवल परमात्मा का ही चिन्तन करते रहे। अपने सहयोगियों को अन्तिम सन्देश दे गए-"आर्यसमाज से लेखन का काम बन्द नहीं होना चाहिए।" रात्रि लगभग दो बजे पं. लेखराम जी अपना बलिदान देकर चिरनिद्रा में चले गए।

ऋषि दयानन्द ने कहा था

सत्य और असत्य क्या है?

जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह-वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह-वह सत्य और जो-जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह-वह सब असत्य है, जैसे कोई कहे कि बिना माता-पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।

(स. प्र. स. ३)

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्रायः वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलतः धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली
पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

आर्यो! वैदिक धर्म का पालन करो

पं. नन्दलाल निर्भय

जिस समय महर्षि दयानन्द सरस्वती संसार में आए थे, उस समय संसार की भारी दुर्दशा थी। नर-नारी धर्म-कर्म, वेद पठन-पाठन, संध्या-हवन, पुण्य-दान, जप-तप भूल चुके थे। यज्ञों में नर-बलि, पशु-बलि, पक्षी-बलि दी जाती थी। स्त्रियों और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। बाल-विवाह, अनमेल विवाह होते थे और कहीं सदाचार, ब्रह्मचर्य की शिक्षा नहीं दी जाती थी। उस समय लाखों बाल विधवाएँ रोती थीं, जिनमें से हजारों विधर्मी, ईसाई, मुसलमानों के घरों को बसा रही थीं। अर्थात् सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था।

नर-नारी कर्म प्रधानता का वैदिक सिद्धान्त त्यागकर जन्म-जाति को बढ़ावा दे रहे थे। वेदों के स्थान पर पुराणों की कथा होती थी। सेवा करने वाले गरीब, कमजोर व्यक्तियों को नीच समझकर ठुकराया जाता था। इसी का परिणाम था कि रोजाना राम, कृष्ण के वंशज हजारों की संख्या में ईसाई, मुसलमान बन रहे थे। उस समय विदेश यात्रा करना महापाप समझा जाता था। विधर्मी लोग हमें असभ्य-जंगली, महामूर्ख बताते थे। ईसाई पादरी वेदों को गडरियों के गीत बताते थे। भारतीयों में पाखण्डी लोगों ने यह धारणा बिठा दी थी कि वेदों को शंखासुर नाम का राक्षस पाताल लेकर चला गया है। अर्थात् वेद इस संसार में नहीं हैं।

उस समय धर्म की हालत आटे के दीपक की तरह थी, जिसे घर के अन्दर रख दें तो चूहे खा जाएँ और यदि बाहर रख दें तो कौए ले कर उड़ जाएँ। उस समय भंगी-चमार के छूने पर, तेली के आगे आ जाने पर धर्म नष्ट होना माना जाता था। भारत के राजा लोग अज्ञानतावश आपस में लड़ते रहते थे। विदेशी अंग्रेज शासक हमारी इस फूट का भरपूर लाभ उठा रहे थे। उस समय वैदिक सभ्यता, संस्कृति, गौ-ब्राह्मणों का कोई रक्षक नहीं था अपितु सभी भक्षक बने हुए थे। ऐसे भयानक समय में महर्षि देव दयानन्द का इस देवभूमि में प्रादुर्भाव हुआ था। स्वामी जी ने संसार के भले के लिए अपने भरे-पूरे परिवार को छोड़ा और जीवन के सभी सुखों को त्यागकर मानवता की सेवा करने का बीड़ा उठाया। महर्षि दयानन्द ने स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ली और योग सीखा। मथुरा में वेदों के प्रकाण्ड पंडित स्वामी विरजानन्द सरस्वती के पास जाकर उनकी सेवा की और वैदिक ज्ञान प्राप्त किया। शिक्षा पूर्ण होने पर दक्षिणा के रूप में गुरुदेव को संसार में वेद-ज्ञान का प्रचार करने का वचन दिया, जिसे जीवन भर निभाया।

स्वामी जी ने भारत में घूम-घूमकर वेद-प्रचार किया और नर-नारियों को कर्म-प्रधानता का महत्त्व समझाया। उन्होंने ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, अजन्मा, अनादि, अजर, अमर, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता बताया। मूर्ति-पूजा को अज्ञानता का मूल बताकर मूर्तिपूजा से होने वाली हानियों का बोध कराया। उन्होंने नारी जाति और गऊ माता को पूज्य बताया तथा स्त्रियों व शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार दिलाया। स्वामी जी ने सबसे पहले स्वराज्य का मन्त्र भारतवासियों को दिया और विदेशी राज्य महादुखदायी बताया। उन्होंने भारत के सभी राजाओं को मिलकर चलने और अपना एक नेता बनाने के लिए प्रेरित किया। सन् १८५७ ई. का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम महर्षि दयानन्द महाराज के प्रयासों का ही सुफल था। स्वामी जी ने राव युधिष्ठिर से मिलकर सर्वप्रथम रेवाड़ी (हरियाणा) में गौशाला की स्थापना कराई। स्वामी जी यह अच्छी तरह जानते थे कि गौ जैसा उपकारी पशु संसार में कोई नहीं है इसलिए उन्होंने गो करुणानिधि पुस्तिका की रचना करके गौ-सेवा को परम धर्म बताया।

स्वामी जी ने भारत के सभी मतों को मानने वाले विद्वानों को समझाया कि अगर तुम संसार का भला चाहते हो तो एक ईश्वर, एक धर्मग्रन्थ, एक अभिवादन मानकर वेद-ज्ञान का प्रचार करो। बड़े दु:ख के साथ लिखना पड़ता है कि उन स्वार्थी, दम्भी लोगों ने स्वामी की सलाह नहीं मानी। स्वार्थी पाखण्डी लोगों ने उन पर गोबर फेंका, पत्थर बरसाए और उन्हें सत्रह बार विषपान कराया, किन्तु

वे अपने धर्म-पथ से विचलित नहीं हुए। अगर स्वामी दयानन्द जी इस धरती पर नहीं आते तो आज कोई भी वेद-शास्त्रों की चर्चा करने वाला, राम, कृष्ण आदि महापुरुषों और ऋषियों-मुनियों का नाम लेने वाला दुनिया में नजर नहीं आता। वास्तव में उन जैसा त्यागी-तपस्वी, वीर, साहसी, ईश्वर-विश्वासी, वेदों का विद्वान् महाभारत काल के बाद कोई दूसरा व्यक्ति इस संसार में नहीं हुआ। वे वस्तुतः सच्चे युगनायक संन्यासी थे। उनका ऋण हम कभी नहीं चुका सकते।

इस समय संसार में हजारों व्यक्ति वेद के विरुद्ध मत-मतान्तर चलाकर, ईश्वर की पूजा छुड़वाकर गुरुडम एवं पाखण्ड फैला रहे हैं। जिनमें से सैकड़ों पाखण्डी जेलों में बन्द हैं। चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार बढ़ रहे हैं, जिससे सारा संसार दु:खी है। पं. लेखराम ने कहा था-लेखनी का कार्य और शास्त्रार्थ बन्द नहीं होने चाहिए। स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा था-शुद्धि का कार्य कभी भी बंद नहीं होना चाहिए। ठण्डे दिल से विचार करें कि क्या हम उनकी बात मान रहे हैं? जो अपने आगे किसी को भी कुछ नहीं समझते। याद रखो यह धन यहीं पड़ा रह जाएगा। इस संसार में जो व्यक्ति नि:स्वार्थ भावना से परोपकार एवं संसार की भलाई के काम करते हैं यह संसार उन्हीं की महिमा के गीत गाता है। अगर आप भी महान् बनना चाहते हैं और महर्षि दयानन्द महाराज के सच्चे शिष्य बनने का दम भरते हैं तो वेद प्रचार के लिए अच्छी तरह कमर कसकर कर्म क्षेत्र में कूद पड़ो। अन्त में-

''आर्य कुमारो! अब तो जागो, आगे कदम बढ़ाओ तुम।
कहने का अब समय नहीं है, करके काम दिखाओ तुम।।
देश, धर्म के काम जो आए, उसे जवानी कहते हैं।
सारा जग खुश होकर गाए, उसे कहानी कहते हैं।।
जगत्गुरु ऋषि दयानन्द के, सपनों को साकार करो।
करो परस्पर प्रेम सज्जनो, वेदों का प्रचार करो।।
स्वामी श्रद्धानन्द बनो तुम, जग में नाम कमाओ तुम।।
लेखराम, गुरुदत्त बनो तुम, वैदिक नाद बजाओ तुम।
अगर नहीं जागोगे मित्रो, भारी दु:ख उठाओगे।
हँसी उड़ाएगी फिर दुनिया, अज्ञानी कहलाओगे।।''

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वप्नानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अतः दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर **'परोपकारिणी सभा'** अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

'बसना और विहँसना सहज उपासना स्रोत समझना'

देवनारायण भारद्वाज

महीनों की प्रतीक्षा के बाद आश्रम का वार्षिकोत्सव एवं भण्डारा हुआ। अन्यान्य लोगों के साथ भक्त ध्यानचन्द्र भी इसमें सम्मिलित हुए। मध्याह्नोपरान्त सत्संग हुआ, जिसमें ध्यानचन्द्र सबसे आगे की पंक्ति में बैठे। अभी गुरु जी का उपदेश प्रारम्भ ही हुआ था कि ध्यानचन्द्र की आँख लग गयी। गुरु जी ने टोक दिया-ध्यानचन्द्र सो रहे हो? ध्यानचन्द्र ने आँखें खोलते हुए उत्तर दिया-नहीं महाराज! उपदेश फिर आगे बढ़ा। देखते क्या हैं कि ध्यानचन्द्र फिर सो गये। गुरु जी ने फिर सतर्क करते हुए कहा-ध्यानचन्द्र! सो रहे हो? उन्होंने फिर वही उत्तर दिया- नहीं महाराज! गुरु शिष्य का यही संवाद एक बार फिर दोहराया गया। ध्यानचन्द्र के चौथी बार सोने पर गुरु जी ने अपने सम्बोधन में ऐसा रूपान्तर कर दिया कि ध्यानचन्द्र को पूरे प्रवचन में नींद नहीं आई। ध्यानचन्द्र के सो जाने पर इस बार गुरु जी ने प्रश्न किया- ध्यानचन्द्र! जी रहे हो? उन्होंने फिर अपना वही पुराना उत्तर दोहरा दिया-नहीं महाराज! इसे सुन सारी सभा खिलखिलाकर हँस पड़ी, और अब जगहँसाई होते देखकर ध्यानचन्द्र की नींद उड़ गयी। यह हास्य प्रकरण एक ध्यानचन्द्र पर ही नहीं, सारे संसार पर घटित होता है, जिसे सन्त कबीर ने देखा और कह पड़े-

सुखिया सब संसार, खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर जागे और रोवे।

माली अपनी बगिया में गया। आज उसको अपने बहाये गये पसीने की बूँदें-खिले हुए फूलों में दिखाई दीं और उसके ओंठ भी मुस्कान से खिल उठे। अभी-अभी रोग से मुक्त हुए अपने बच्चे के मुख पर पहली मुस्कान देखते ही, माता के अधर भी मुस्कान से खिल उठे। विद्यालय में उत्तम प्रस्तुति के फलस्वरूप गुरुजी ने बच्चे को एक कलम पुरस्कार में दी। वह प्रसन्न मन से कलम परिवार में लेकर आया और मुस्कराते हुए सभी को दिखाया। परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों के मुख मुस्कान से खिल उठे। माली ने पौधों को सुडौल बनाने के लिए उनकी खूब छंटाई-तुड़ाई की, माता ने बच्चे को सुयोग्य बनाने के लिए उसकी खूब खिंचाई की और गुरुओं ने अपने शिष्यों को सफल बनाने के लिए उनकी पिटाई भी की, किन्तु आज उनकी प्रफुल्लता, प्रसन्नता एवं सफलता पर दोनों पक्षों के मुख पर खिली हुई मुस्कान एक बिन्दु पर एकाकार हो रही है और ये सभी दृश्य उपासना की परिभाषा को परिलक्षित कर रहे हैं। इसी प्रकार लौकिक जगत् की उपलब्धियाँ पारलौकिक व्योम में अल्पज्ञ आत्मा को सर्वज्ञ, हृदय की गहराई में अवस्थित मिल जाता है। एकान्त में आसन लगाकर कीर्तन करना या मानसिक-वाचिक जाप करना भी उपासना की श्रेणी में आता है, पर महर्षि पतञ्जलि की अनुभूति **''तज्जपस्तदर्थभावनम्''** हमारा सहज मार्गदर्शन करती है। नाम कीर्तन के साथ ईश्वर के गुणों से आत्मा को भावित व विभूषित करना ही उपासना है, जिसकी फलश्रुति प्रत्यक्ष जगत् में दिखाई देती है।

उस दिन गुरुजी ने एक वेदमन्त्र को आधार बनाकर अपना मनोहारी उपदेश दिया। मन्त्र द्रष्टा ऋषि ब्रह्मा ने अपने एक पंक्ति के वेदमन्त्र में इस उपासना प्रकरण को खोलकर रख दिया है।

ओं भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति
त्वोपास्महे वयम्।।

अथर्व १३.४.(६) ५४

अर्थात् हे परमात्मन् तू (भवद्वसुः) सांसारिक धन-साधन प्राप्त कराने वाला, (इदद्वसुः) श्रेष्ठ पुरुषों को ऐश्वर्यवान् करने वाला, (संयद्वसुः) पृथिवी आदि लोकों को नियम में रखने वाला, (आयद्वसुः) निवास का विस्तार करने वाला है। (इति) इसी प्रकार (वयम्) हम (त्वा उपास्महे) तेरी उपासना करते हैं। मन्त्र में चार बार आये 'वसुः' शब्द का हिन्दी सरलार्थ 'बसना या बसाना' है। अपने पुराने जर्जर होते शब्दकोश में 'बसना' शब्द चार अर्थों को व्यक्त करता है। यथा-१. निवास करना २. जनपूर्ण होना ३. ठहरना ४. सुगन्ध से पूर्ण होना। मन्त्र में चार बार आये (वसुः) बसना एवं बसाने के साथ एक-एक उपसर्ग (भवद्) सांसारिक धन-साधन प्राप्त कराने वाला, (इदद्) श्रेष्ठ पुरुषों को

ऐश्वर्यवान् करने वाला, (संयद्) पृथिवी आदि लोकों को नियम में रखने वाला और (आयद्) निवास का विस्तार करने वाला-परमेश प्रभु को बताया गया है। लेखक को इन चार सोपानों में भक्त के भगवान् के समीप पहुँचने का अथवा उसकी उपासना का विज्ञान दिखाई देता है। कोई व्यक्ति किसी कलाकार के पास पहुँचना चाहता है, तब वह उस कलाकार के काम में हाथ बँटाने लगता है तो कलाकार उसे अपना लेता है। इसी प्रकार लोक में उपरोक्त चार श्रेणी के कार्यों को करते हुए व्यक्ति परलोक में भी प्रभु का प्यार अर्जित कर लेता है। उपरोक्त सोपान यहाँ पर इन चार बिन्दुओं द्वारा प्रकट किए जाते हैं। १. भव निवास २. वैभव निवास ३. उद्‌भव निवास और ४. महानुभव निवास। प्रत्येक बिन्दु का संक्षेप में निर्वचन इस प्रकार करते हैं-

१. भव निवास- हाथ-हृदय-मस्तिष्क में समन्वय बनाकर रहें। संसार में न केवल ऊपर, न केवल नीचे, प्रत्युत् ऊपर नीचे की सभी दिशाओं का सन्तुलन बनाकर जीयेंगे तो दु:ख से बचकर सुख के मार्ग पर चलेंगे। जीवन जीने का एक दृष्टिकोण है-

कबिरा खड़ा बज़ार में सबकी माँगे खैर।
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।।

यह दृष्टि किसी वीतराग सन्त की हो सकती है, जो किसी गुफा-कन्दरा या जंगल में रहता है और कभी बाज़ार में आ जाता है। संसार के ग्राम-नगर में बसने वाले व्यक्ति को नीर-क्षीर विवेक के साथ जीना पड़ेगा। इससे उत्तम उसकी दृष्टि है-

सांई इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

यह दृष्टिकोण अच्छा तो है किन्तु सर्वोत्तम नहीं। इन दोनों से भी निकृष्ट-एक दृष्टि यह भी है-

अजगर करे न चाकरी पंछी करे ना काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

इन सबसे ऊपर प्रगतिशील वेद का निर्देश है-

"कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।।"

(अथर्व ७.५०.८)

भावार्थ- मनुष्य अपने पूर्ण पुरुषार्थ एवं प्रभु-भक्ति से पशु, भूमि, इन्द्रिय, निर्धनता एवं शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सुखी रहे। मनुष्य के पास कोई सम्पत्ति है या नहीं है, किन्तु प्रभु प्रदत्त शरीर से बढ़कर कोई सम्पदा नहीं हो सकती है।

मनुष्यों को अपनी बाल्यावस्था के बाद या तब से ही अपनी आजीविका को कमाना पड़ता है। एक श्रमिक दिनभर श्रम करके अपनी दिहाड़ी सँभालते हुए घर जा रहा था। मार्ग में पड़ने वाले मन्दिर में दर्शनार्थ रुक गया। शानदार सवारी से एक श्रेष्ठी उतरे और अपनी जूतियाँ बाहर छोड़कर देवमूर्ति की ओर चले गये। वह श्रमिक उस दिन मूर्तियों से अधिक स्वर्णाभूषण जड़ित जूतियों को ही देखता रह गया। सोचने लगा-कहाँ यह सुन्दर चमकदार जूतियाँ और कहाँ बिवाइयों से फटे ये मेरे नंगे पैर? उसके इस पश्चाताप का सहज ही प्रायश्चित् भी हो गया। उसने देखा कि हाथों के बल घिसट-घिसट कर एक भिक्षुक मन्दिर की ओर बढ़ रहा है। इस दृश्य को देखकर देवमूर्ति तक पहुँचने से पूर्व ही मानो उसके हृदय में साक्षात् परमात्मा प्रकट हो गये। उसके जुड़े हुए दोनों हाथ व सिर हृदय की ओर झुक गये। वह बोल पड़ा-प्रभु! आपका धन्यवाद, श्रेष्ठी को स्वर्णाभूषण जड़ित जूतियाँ शुभ हों- मुझे मेरे पैर ही मंगलकारी बने रहें।

२. वैभव निवास- महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का भरी सभा में शास्त्र-सम्मत उपदेश समाप्त हुआ, तभी रुई धुनने वाला धुना उनके पास आया और बोला-महाराज! मेरे जैसे अनपढ़, गरीब का उद्धार कैसे होगा? स्वामी जी ने उसे बड़ी सरलता से समझा दिया। ग्राहक की जितनी रुई आये, उसकी पूरी रुई धुनकर रजाई भर दो। अपनी इसी ईमानदारी की मजदूरी से अपने परिवार का पालन करो। यही तुम्हारी पूजा और उद्धार का आधार होगी। राजा भोज कवि और कविता प्रेमी थे। जो कवि उन्हें अपनी नयी कवितायें सुनाता था, उसे वे एक लाख स्वर्ण मुद्रायें पुरस्कार में देते थे। ऐसे ही नवागत एक कवि ने राजधानी में रहने की इच्छा प्रकट कर दी। कर्मचारियों के द्वारा उसके लिए मकान की खोज की गयी। वहाँ एक से एक बढ़कर विद्वान् निवास कर रहे थे। एक जुलाहे को अविद्वान् समझकर उसको विद्वान् के लिए मकान खाली करने का

आदेश दिया गया। उसने राजा भोज के दरबार में पहुँचकर अपनी अभ्यर्थना प्रकट की। बोला-महाराज अपने काम के साथ-साथ मैं भी साधारण कविता कर लेता हूँ। प्रयत्न करूँ तो अच्छी कविता कर सकता हूँ उसके श्लोक के अन्तिम तीन शब्दों ने न केवल उसका मकान उसे वापस करा दिया, प्रत्युत् उसे स्वर्णमुद्राओं का पुरस्कार भी प्रदान करा दिया। उसने राजा की स्तुति करते हुए कहा- ''कवयामि, वयामि, यामि'' प्रथम शब्द 'कवयामि' से 'क' हटकर 'वयामि' रह गया और वयामि से 'व' हटकर यामि रह गया। अर्थात् मैं कविता करूँ या बुनाई करूँ अथवा घर छोड़कर चला जाऊँ। अपना घर-द्वार सजाने को तू औरों का घर बरबाद न कर। श्रेष्ठ शासक वही होता है जो अपनी पूर्ण प्रजा में विद्या एवं सद्‌गुणों के विकास की व्यवस्था करता है।

मनुष्य अपने जन्म-जन्मान्तर के संचित संस्कारों के वशीभूत होकर अपने विकास के राजपथ पर चलते हैं। शासक एवं आचार्यगण उनके कुसंस्कारों को दबाकर अच्छे संस्कारों को प्रखर बनाते हैं। कम्प्यूटर युग से दशाब्दियों पहले सिनेमा के विज्ञापनपट बनाने वाले अशिक्षित श्रमजीवी मकबूल फिदा हुसैन जी उच्चकोटि के चित्रकार बन गये। उनके चित्र लाखों रुपये में बिकने लगे। इससे उनका विकास तो हुआ, किन्तु कुछ अश्लील चित्रों के कारण उन्हें प्यारे देश से पलायन करना पड़ा। इक्का-तांगा चलाकर जीविका कमाने वाले महाशय धर्मपाल मसालों के शहंशाह होकर अपार ऐश्वर्य के स्वामी बने और उन्होंने अपने वैभव से शिक्षालय, चिकित्सालय, धर्मालय, असहायजनों के उद्धार के कीर्तिमान को स्थापित कर दिया। अपने उत्पाद का विज्ञापन करने के लिए वे किसी प्रसिद्ध अभिनेता को नहीं बुलाते हैं, किन्तु इसका अभिनय वे स्वयं करके करोड़ों की राशि बचाकर दरिद्रनारायण की सेवा में लगा देते हैं। साधारण धन में जहाँ मुद्राओं की चमक होती है, किन्तु इस ऐश्वर्य में धन लक्ष्मी की चमक के साथ परमैश्वर्यशाली परमात्मा की दिव्य उपासना की दमक भी होती है। वेदमाता अपने पुत्रों को सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं।

''मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्''

(अथर्व १६.३.१)

अर्थात् हे ईश्वर! श्रम से ऐश्वर्य कमाकर मैं सामर्थ्यवान् हो जाऊँ, उसका हित-परहित में निवेश करके मैं शीर्ष स्थान को प्राप्त करूँ।

३. उद्‌भव निवास- 'उद्‌भव' से तात्पर्य नवजन्म, सृजन एवं निर्माण से है। यह कार्य कोई एक अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता है। शिशु के नवजन्म के लिए पति-पत्नी दो की, फिर परिवार की आवश्यकता होती है। परिवारों के द्वारा ही समाज व राष्ट्र का और राष्ट्रों के द्वारा ही विश्व का कल्याण व उत्थान होता है। वसु आठ होते हैं पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्र। यही बसने और बसाने में सहायक होते हैं। इनमें कुछ प्रकाशलोक हैं और चन्द्रमा अन्धकारपूर्ण है। सूर्य के तापजन्य प्रकाश को चन्द्रमा प्राप्त करता है और उसे शीतजन्य बना देता है। सूर्य जहाँ सृष्टि में सर्वप्रकारेण सृजन करता है, चन्द्रमा उसी सृजन में अपने सोम के द्वारा गुणवर्धन करता है। मानव मात्र को इस समन्वय के विज्ञान को अपनाने की आवश्यकता है। जंगल में लगी आग के मध्य एक लंगड़ा और दूसरा अंधा फँस गया। लंगड़े ने आग को देख लिया और चिल्ला पड़ा-आग-आग। वह नहीं सकता था भाग। तभी अन्धा गया जाग-वह सकता था भाग। दोनों में मेल हो गया। अन्धे ने लंगड़े को पीठ पर बैठाया। लंगड़े ने मार्ग दिखाया। इस प्रकार दोनों ने अपने को जलने से बचाया। यह समन्वय का सिद्धान्त सृष्टि के हर क्षेत्र में प्रतिपालनीय है। आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम राम को इस समन्वय के विज्ञान पर पूर्ण अधिकार था, जिसके कारण जंगल में रहते हुए, बिना अपने राज्य अयोध्या से सेना बुलाये, वनवासियों, गिरिवासियों से सहायता लेकर अहंकारी रावण का विनाश करके यह लोकोक्ति चरितार्थ कर दी-

एक लख पूत सवा लख नाती,
ता रावण घर दिया न बाती।

दुर्योधन ने समन्वय किया किन्तु विवेकहीन अवैज्ञानिक, अपने पक्ष के सभी योद्धाओं के मारे जाने के बाद भी वह साधारण सेनानी शल्य पर विजय का भरोसा करके युद्ध लड़ता रहा और कौरवों के सर्वनाश का कारण बना। पाण्डवों ने योगिराज कृष्ण के समन्वय से ऐतिहासिक

विजय का वरण किया।

४. महानुभव निवास– जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि 'बसना' शब्द का एक अर्थ सुगन्ध करना भी है। उपरोक्त तीन पग धरने के बाद व्यक्ति को मिलता है वह धरातल जहाँ उसका विस्तार होता दिखाई देता है। फूल एक उद्यान में खिलता है उसकी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल जाती है। मनुष्य भले एक ही स्थान पर सीमित रहे किन्तु उसके यश की सुगन्धि दूर-दूर तक फैलकर उसे विश्वव्यापी बना देती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने मानसपुत्र पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा को ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत का प्रोफेसर बनाकर इंग्लैण्ड भेजा था, जिन्होंने विश्व के मुख्य विकसित देशों में भारत के गौरव का घोष कर दिया था। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अंग्रेजों से युद्ध करके धूम मचा दी थी। ऐसे अनेक भारत-नक्षत्रों ने विश्व-गगन में विजय पताका फहराकर जहाँ एक ओर भारतमाता की मान-मर्यादा की रक्षा की, वहीं दूसरी ओर स्वयं को यशस्वी बनाकर अपना विश्वव्यापी विस्तार कर लिया।

सद्‌गुणी संसार जिसका सत्कार करता है, सर्वगुणी परमेश प्रभु भी उसे प्यार करता है। उपासना का यही परिष्कार मनुष्य का पुरस्कार है। कथन का विस्तार न करके सामगान (साम. ४४५) से ही आलेख का उपसंहार करते हैं-

अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः।।

अर्थात्- जो सज्जन वेद-मन्त्रों को श्रद्धापूर्वक गा-गाकर ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करते हैं, दयालु प्रभु उनकी भावनाओं को अवश्य स्वीकार करते हैं। वे उनके दुःखों को दूर कर सुख प्रदान करते हैं। अतः सब मनुष्यों को उनके सान्निध्य को प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन मन्त्रोच्चारण पूर्वक सन्ध्या-हवन व सत्संग करते रहना चाहिए। इस प्रकार महात्मा भर्तृहरि जी के अनुभूत प्रयोग उसके जीवन में सार्थक हो उठते हैं।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति तेषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।

रसों में सिद्ध व पुण्यवान् क्रान्तदर्शी वे कवीश्वर धन्य हैं जिनके यश रूपी शरीर में न बुढ़ापे का भय है और न मृत्यु का। दीन हो या उच्चासीन प्रभु प्यारे से जिसका सम्बन्ध है-उसको हरदम आनन्द ही आनन्द है।

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठकगण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अतः ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

ओम्मुनि
मन्त्री, परोपकारिणी सभा

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं। चिकित्सालय का समय प्रातः ९ से ११ बजे तक है। रविवार का अवकाश होता है।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

शङ्का समाधान – २९

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का– १. महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट दैनिक यज्ञ में नियमपूर्वक कुल कितनी आहुतियाँ दी जानी चाहिएं?

२. प्रातः यज्ञ की आहुतियों के साथ सायंकाल की आहुतियां देने का प्रावधान महर्षि दयानन्द द्वारा कहाँ लिखा है? क्या रविवार के सत्सङ्ग में दोनों समय की आहुतियां देने का प्रावधान है?

३. महर्षि दयानन्द द्वारा उदयपुर में सत्यार्थप्रकाश कब लिखा है और पूर्व में भी सत्यार्थप्रकाश लिखा गया– तो दोनों में क्या अन्तर है?

–कन्हैयालाल आर्य, प्र. आर्यसमाज, भीलवाड़ा

समाधान– १. महर्षि दयानन्द ने दैनिक यज्ञ का उल्लेख चार ग्रन्थों–

(१) पञ्चमहायज्ञविधि (संशोधित संस्करण संवत् १९३४ वि.),

(२) संस्कारविधि (द्वितीय संस्करण संवत् १९४० वि.),

(३) ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (संवत् १९३३ वि.),

(४) सत्यार्थप्रकाश (द्वितीय संस्करण संवत् १९४० वि.) में किया है।

कर्मकाण्ड की दृष्टि से पञ्चमहायज्ञविधि एवं संस्कारविधि महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें भी पञ्चमहायज्ञविधि से लगभग छः वर्ष पश्चात् संवत् १९४० वि. में संस्कारविधि का संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ। सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण भी संवत् १९४० वि. में प्रकाशित हुआ है। अतः इन्हें अन्य पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों पर अधिमान स्वतः प्राप्त है।

सत्यार्थ प्रकाश में दैनिक यज्ञ के विषय में महर्षि का अभिमत है–

"प्रश्न– प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है?

उत्तर– प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति और छः-छः माशे (लगभग ६ ग्राम) घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है।" समुल्लास –३, पृष्ठ–३५

संस्कारविधि– गृहाश्रम संस्कारान्तर्गत अग्निहोत्र विधि में महर्षि ने पूर्णाहुति व्यतिरिक्त सोलह आहुति के लिए निम्न सोलह मन्त्रों का उल्लेख किया है। **आघारावाज्यभागाहुति चार, प्रातः/सायं के चार, व्याहृति चार, ओमापो ज्योति. एक, यां मेधां. एक, विश्वानि देव. एक, अग्ने नय सुपथा. एक = (४+४+४+१+१+१+१=१६)**

यद्यपि पञ्चमहायज्ञविधि एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में पूर्णाहुति व्यतिरिक्त मात्र नौ आहुतियां वर्णित हैं। महर्षि ने कर्मकाण्ड में अनेक परिवर्तन/परिवर्धन किए हैं। अग्निहोत्र/दैनिक-यज्ञ विधि में भी परिवर्तन/परिवर्धन किया है।

अतः **दैनिक यज्ञ में पूर्णाहुति से अतिरिक्त सोलह आहुति देनी चाहिएं। यहाँ यह स्मरणीय है कि समिदाधान के अनन्तर जलसिञ्चन से पूर्व 'अयन्त इध्म आत्मा.' मन्त्र द्वारा दी जाने वाली पाँच आहुतियां समिदाधान/अग्न्याधान का अंग होने से उपरिवर्णित सोलह आहुति से अतिरिक्त होंगी।** श्रौतसूत्रों में अग्न्याधान (समिदाधान इसका अंगभूत कर्म है।) एक स्वतन्त्र यज्ञ है। महर्षि ने यज्ञकर्त्ताओं के आहिताग्नि न होने के कारण अग्न्याधान को स्वतन्त्र कर्म की अपेक्षा दैनिक अथवा किसी भी अन्य नैमित्तिक यज्ञ का अंगभूत कर्म प्रतिपादित किया है। अतः यज्ञ की सोलह आहुति कथन करना (अयन्त इध्म आत्मा. मन्त्र द्वारा दी जाने वाली पाँच आहुतियों की गणना न करते हुए) पूर्णतः युक्तियुक्त है।

२. अग्निहोत्र सायं-प्रातः दोनों समय किया जाकर पूर्ण होने वाला कृत्य है। तद्यथा–

क– सायंप्रातरग्निहोत्रम्– वैतानश्रौतसूत्र ७.१

ख– सायमारम्भणमग्निहोत्रं प्रागपवर्गम्– वाराह श्रौ.

सू. १.५.२.९

ग- अग्निहोत्रं सायमुपक्रमं प्रातरपवर्गम् आचार्या ब्रुवते. बौ. श्रौ. २४.३०

यदि किसी समय सायं/प्रात: यह छूट जाता है, तब आने वाले अग्रिम समय जैसे सायं छूटा है, तब प्रात: कालीन यज्ञ से पूर्व सायं आहुति देने का समय है और प्रात: कालीन छूट गया है, तब अग्रिम सायं आहुति से पूर्व प्रात: की छूटी आहुति देने का काल है। तद्यथा-

आ प्रातराहुतिकालात्सायमाहुतिकाल आ सायमाहुतिकालात् प्रातराहुति: काल इत्यापत्कल्प: वैखानस श्रौ. २.२

यह व्यवस्था भी आपत्कल्प है अर्थात् किसी विशेष परिस्थिति में ही छूटी आहुति दी जा सकती है। इससे ज्ञापित है कि अग्रिमकाल की आहुति पूर्वकाल में देने की व्यवस्था नहीं है।

आपने महर्षि का निर्देश स्थल जानना चाहा है। महर्षि ने पञ्चमहायज्ञविधि एवं ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में '**एकस्मिन् काले सर्वाभिर्वा**' यह कहा है। इसका अर्थ है कि एक काल में सभी-प्रात:कालीन 'सूर्यो ज्योति.' आदि चार तथा सायंकालीन 'अग्निर्ज्योति:.' आदि चार अर्थात् उभयकालिक आहुतियों से यज्ञ करे।

यहाँ यह ध्यान रहना चाहिए कि ये दोनों ग्रन्थ संस्कारविधि तथा सत्यार्थप्रकाश (जहाँ स्पष्टत: सोलह आहुति देने का निर्देश है।) से लगभग छ: वर्ष पूर्व के हैं। साथ ही इनमें सोलह आहुति के स्थान पर मात्र नौ मन्त्र वर्णित हैं। अत: यह निर्देश केवल उस स्थिति में संगत है जब यज्ञ पञ्चमहायज्ञविधि अथवा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अनुसार सम्पन्न किया जा रहा हो, किन्तु जब यज्ञ संस्कारविधि के अनुसार पूर्वोक्त सोलह मन्त्रों से सम्पन्न हो, तब दोनों काल की आहुति एक साथ तथा वह भी अग्रिम रूप से देना न तो शास्त्रसम्मत है और न ही महर्षि-सम्मत।

रविवार का सत्संग एक विशेष प्रयोजन के अन्तर्गत प्रारम्भ हुई व्यवस्था है। इन अवसरों के लिए कोई विशेष निर्देश नहीं है। यह मात्र सामाजिक व्यवस्था है।

३. राजा जयकृष्ण दास के आग्रह पर सन् १८७४ ई. में सत्यार्थप्रकाश को बोलकर लिखवाया था। इसके लेखन कार्य के लिए पं. चन्द्रशेखर नामक महाराष्ट्रीय विद्वान् थे। सन् १८७५ ई. में यह प्रकाशित हुआ, किन्तु लेखक के पौराणिक होने के कारण श्राद्ध-तर्पण तथा यज्ञ में पशुबलि जैसे अवैदिक तथा महर्षि मन्तव्य के विपरीत विचार भी प्रकाशित हुए थे। इन सन्दर्भों के महर्षि के संज्ञान में लाए जाने पर महर्षि ने विज्ञापन प्रकाशित कर इनका खण्डन किया था। इसके पश्चात् महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश का व्यवस्थित पुनर्लेखन पुन: बोलकर लिखवाया था।

महर्षि ने १४ अगस्त सन् १८८२ ई. में उदयपुर से लाला कालीचरण रामचरण फर्रुखाबाद को पत्र द्वारा ४-५ दिन पूर्व उदयपुर पहुँचने की सूचना दी है- "...विदित हो कि आज ४ वा ५ दिन व्यतीत हुए हैं, हम उदयपुर में आके नौलखा बाग के महल में ठहरे हैं।" द्र. महर्षि दयानन्द सरस्वती का महत्त्वपूर्ण पत्र व्यवहार पत्र-१७२, पृ. ४५५-४५६ अर्थात् **महर्षि १०-११ अगस्त सन् १८८२ ई. में उदयपुर पहुँचे।**

२९ अगस्त सन् १८८२ को महर्षि ने उदयपुर से मुंशी समर्थदान (प्रबन्धक वैदिक यन्त्रालय) को सत्यार्थ प्रकाश छपने के लिए भेजने का वर्णन किया है। तद्यथा- "**आज सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध करके ५ पृष्ठ भूमिका के और ३२ पृष्ठ प्रथम समुल्लास से भेजे हैं, पहुँचेंगे।**" द्र. म. द. स. का महत्त्वपूर्ण पत्र व्यवहार-पत्र १७६ पृष्ठ ४५९-४६०

इस प्रकार उदयपुर पहुँचने के १८-१९ दिन बाद ही सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण छपने के लिए प्रेस भेजना प्रारम्भ हो गया था। इतना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मात्र १८ दिन में लिखना सम्भव नहीं है। **संवत् १९३६-३७ में प्रकाशित महर्षि के ग्रन्थों के अन्तिम पृष्ठ पर सत्यार्थप्रकाश छपेगा का विज्ञापन उपलब्ध है। पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी का मत है कि उदयपुर पहुँचने से लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व द्वितीय संस्करण तैयार हो चुका था।** सत्यार्थप्रकाश के दोनों संस्करणों का अन्तर पृथक् लेख का विषय है।

भक्त अमींचन्द जी

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महर्षि दयानन्द जी का जीवन अत्यन्त घटना प्रधान है। ऋषि के जीवन की बहुचर्चित और प्रेरक घटनाओं में से एक श्री भक्त अमींचन्द का हृदय-परिवर्तन अथवा काया का पलटना है। ऋषिवर दिसम्बर सन् १८७७ के अन्तिम दिनों झेलम (पश्चिमी पंजाब का एक सीमान्त नगर) पधारे और १३ जनवरी तक वहाँ अमृत-वर्षा की। १३ जनवरी से दो फ़रवरी तक उसी नगर के पास ही गुजरात नगर में डेरा लगाया। महाराज का झेलम आगमन अपने दूरगामी परिणामों के कारण इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है।

मात्र १८ दिन की इस प्रचार-यात्रा से आर्यसमाज को, देश-जाति को और वैदिक मिशन को इस क्षेत्र से जितने नररत्न, जितने बलिदानी, ज्ञानी तथा इतिहास पुरुष मिले इतने प्राणवीर कहीं किसी और क्षेत्र से नहीं मिले।

हमने महर्षि के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र में यह तथ्य उजागर किया है। आज झेलम के भक्तराज अमींचन्द के जीवन पर प्रकाश डालते हुये इसको प्रबल शब्दों में उठाने की जी में आई है। यह घटना प्राय: सब जीवनी लेखकों ने दी है। कुछ एक ने इसे झेलम में घटी लिखा है, तो कुछ ने इसे गुजरात में घटी बताया है, परन्तु घटना तो घटी, यह सब स्वीकार करते हैं। कहाँ पर घटी? यह मतभेद गौण है। स्वयं भक्तराज श्री अमींचन्द जी ने इसका हृदयस्पर्शी स्पष्ट संकेत देते हुये अपने एक सुप्रसिद्ध गीत-

'तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया'

में महर्षि के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये ये पंक्तियाँ लिखी हैं-

तुम्हारी कृपा से अजी मेरे भगवन्
मेरी ज़िन्दगी ने अजब पलटा खाया

ऋषि-जीवनी के मर्मज्ञ विद्वानों ने एक स्वर से यह भी स्वीकार किया है कि भक्त जी ने ऋषि के कृपा-कटाक्ष से हृदय-परिवर्तन की घटना के पश्चात् ऋषि दरबार में ही पश्चात्ताप के अश्रुकण टपकाते हुये वहीं झेलम में यह गीत प्रथम बार सुनाया था।

अब इसी ऐतिहासिक घटना से जुड़े एक प्रश्न का समाधान करते हुये हम आगे चलेंगे। यह घटना कहाँ घटी? झेलम अथवा गुजरात? इस प्रश्न को उठाने वालों व समाधान करने वालों ने एक बात का ध्यान किया ही नहीं। भक्त जी का सम्बन्ध इन दोनों ही नगरों से था। गुजरात भी झेलम से अति दूर नहीं था। ऋषि झेलम के पश्चात् ही गुजरात गये थे। भक्त जी का अपना नगर झेलम था और गुजरात उनकी ससुराल थी।श्री पं. चमूपति जी ने इस घटना को झेलम में घटा माना है। वहीं पर भक्त जी कोर्ट में 'मिसल खाँ' थे। झेलम में ही भक्त जी ऋषि-दर्शन करने व उन्हें सुनने को आते रहे। कुसंगति के कारण परस्त्रीगामी हो गये। जँचता यही है कि उनके नगर के लोगों से ही ऋषि को उनकी इस दुर्बलता का पता चला।

भक्त जी का झुकाव अन्य हिन्दुओं के सदृश शंकर के मायावाद अद्वैतवाद की ओर था। श्री महाराज को सुनकर वे झेलम में ही 'ब्रह्म' से 'जीव' बन गये अर्थात् त्रैतवादी हो गये। जब ऋषि दरबार में भक्त अमींचन्द ने उपरोक्त गीत गाया, तब ऋषि ने कहा,

''अमींचन्द तुम हो तो हीरे, परन्तु कीचड़ में पड़े हो।''

बस इसी कृपा-कटाक्ष से उनका कल्याण हो गया। वह कीच-बीच पड़ा हीरा अपने दोष को दूर करके सन्मार्ग का पथिक बन गया। निष्कासित की गई पत्नी को घर पर ले आया। अब कल्याण-मार्ग का पथिक बनकर वह दूसरों के लिये एक उदाहरण बन गया। न जाने उसके इस जीवन-परिवर्तन से कितने पथभ्रष्टों ने प्रेरणा पाकर अपना सुधार करके बेड़ा पार कर लिया।

पं. लेखराम लिखित ऋषि जीवन के मूल उर्दू संस्करण के पृष्ठ ३५३ पर ला. गंगाराम (पं. लेखराम के अभिन्न मित्र) द्वारा वर्णित भक्त जी के नवीन वेदान्त छोड़ने और वेद-पथ की ओर आने की बात तो लिखी है, परन्तु कुसंग दोष व ऋषि के कृपा-कटाक्ष का उल्लेख नहीं है। ग्रन्थ लेखक प्रत्येक घटना को अपने नोट्स (notes) में नहीं लिखता। बहुत कुछ उसके मस्तिष्क में भी होता है जो वह लिखते समय जोड़ लेता है। हमें इसका कारण यही लगता है।

पाठकों को यह भी बताना आवश्यक है कि पं. लेखराम जी भी झेलम जनपद की देन थे। दोनों की जन्म की बिरादरी एक ही थी। सो पण्डित लेखराम जी से यह घटना छिपी नहीं

थी। पाठक यह भी न भूलें कि आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विचारक, इतिहासकार और देश के महान् बलिदानी क्रान्तिकारी भाई परमानन्द जी भी झेलम जनपद की देन थे। इन पंक्तियों के लेखक ने भाई जी के जीवनकाल में ही उनके सैकड़ों लेख तथा कई पुस्तकें पढ़ लीं थीं। भाई जी ने उपरोक्त घटना (ऋषि के कृपा-कटाक्ष) का कभी भी प्रतिवाद नहीं किया।

हमने आर्यसमाज के पुराने पत्रों की फाइलों में ला. गंगाराम जी झेलम की बहुत चर्चा पढ़ी है। वह ऋषि-दरबार में आया करते थे। आपने भी इस घटना का कभी प्रतिवाद नहीं किया था, सो यह घटना एक कठोर सत्य है।

पाठकों को आरम्भ में एक संकेत दिया गया था कि ऋषि की झेलम-यात्रा का एक ऐतिहासिक पहलू है। सब आर्यबन्धु यह जान लें कि श्री भाई परमानन्द जी, हुतात्मा क्रान्तिवीर भाई बालमुकुन्द जी, भाई बालमुकुन्द जी की पत्नी सती माता रामरखी का जन्म भी झेलम जनपद का था। लाहौर में कई गोलियों का स्वाद चखकर स्वराज्य-संग्राम में प्राणोत्सर्ग करने वाला हुतात्मा खुशीराम भी झेलम जनपद की देन था, दृढ़ आर्यसमाजी था। पं. लेखराम जी के जन्मस्थान सैदपुर में ही वीर खुशीराम जन्मा था। यह सेवक निश्चित रूप से तो नहीं जानता, परन्तु अनुमान प्रमाण से मानना पड़ता है कि भाई परमानन्द जी की सतीसाध्वी धर्मपत्नी भी झेलम जनपद की ही देन थी।

जिस हुतात्मा खुशीराम का हमने ऊपर उल्लेख किया है उनके भाई कविवर सीताराम आर्य स्वतन्त्रता-सेनानी के हमने कभी दर्शन किये थे। वह प्रखर देशभक्त भी झेलम जनपद की देन था। आर्यसमाज के प्रसिद्ध दानी लाला दीवानचन्द जी भी पं. लेखराम जी के गाँव में ही जन्मे थे। क्या पं. लेखराम जी, भाई परमानन्द जी, भाई बालमुकुन्द माता रामरखी की चर्चा के बिना आर्यसमाज व जन-जागरण का इतिहास लिखा जा सकता है?

अब भक्त जी के जीवन के कुछ प्रसंग देकर हम अपनी लेखनी को विराम देंगे। आर्यसमाजों में बहुत लम्बे समय तक आपके गीत घर-घर में, सत्संगों में, उत्सवों में, प्रभातफेरियों में और शोभायात्राओं में गाये जाते थे। मुनिवर गुरुदत्त जी विद्यार्थी से लेकर ला. देवराज, महात्मा मुन्शीराम तथा पं. गंगाप्रसाद द्वय तक सबने भक्त जी के **'जय जय पिता परम'** गीत को भक्तिविलीन हृदय से गाया। आर्यसमाज में तो उनके गीतों का युग अब रहा नहीं, परन्तु पाकिस्तान में आज भी भक्त जी के गीत गाये जाते हैं। मदरसों में (भारत में भी) जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उनमें मौलाना मुहम्मद इस्माईल नाम के एक पाकिस्तानी की यह रचना सब मिलकर गाते हैं। हम तो उसे पढ़कर दंग रह गये। वह रचना है-

उठो सोने वालों सिहर हो गई।
इधर थी जो दुनिया उधर हो गई।।

यह लम्बा गीत भक्त अमींचन्द रचित है। इसे मदरसों के पाठ्यक्रम में देखकर हमने 'जनज्ञान' में 'भक्त अमींचन्द पाकिस्तान में' शीर्षक से एक भावपूर्ण लेख कभी लिखा था।

भक्त जी के भक्ति गीत, उद्बोधन गीत, सैद्धान्तिक गीत, समाज-सुधार के गीत सब भावपूर्ण व प्रेरक थे।

परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द
सिधारा है परलोक डंके बजाता

कभी प्रभातफेरियों में झूम-झूमकर इसे गाया जाता था।

'दयानन्द देशहितकारी तेरी हिम्मत पे बलिहारी'

इस गीत ने मृतप्राय आर्य-जाति में नवजीवन का संचार कर दिया। जन-जन को देशभक्त और निर्भीक बना दिया।

एक गीत में भक्त जी ने निडरता व वीरता तथा बलिदान की घुट्टी पिलाने के लिये लिखा था-

अमींचन्द ऐसा होना कठिन है, धर्मावलम्बी वेदानुयायी।
कष्ट उठाये, न घबराये, धर्म न हारा, यदि विष खाई।।

महर्षि के बलिदान विषपान पर यह गीत आबाल वृद्ध बड़े जोश से गाया करते थे।

भक्तजी ने मांसाहार के खण्डन, शाकाहार के मण्डन तथा दुर्गुणों-दुर्व्यसनों के परित्याग पर बड़े मार्मिक गीत लिखे। अपने निधन से थोड़ा समय पहले जब आप लाहौर समाज (वच्छोवाली) के उत्सव पर पधारे थे तो बड़ी मस्ती से एक गीत गाते हुये, संसार की नश्वरता का चित्र खींचते हुये बड़े-बड़े बलवानों और धनवानों के संसार से जाने की चर्चा करते हुये अब अपनी बारी (मृत्यु) की भविष्यवाणी कर दी। लोगों के हृदयों को आपने छू लिया। यह आपका सम्भवतः अन्तिम गीत था। यह मृत्यु का पूर्वाभास था। श्रोता भाव-विभोर हो गये। हमने यह प्रसंग यशस्वी आर्यनेता, विद्वान् इतिहासकार पं. विष्णुदत्त जी के एक लेख में पढ़ा था, और ऐसा ही हुआ। वे शीघ्र चल बसे। लेखक के जन्म स्थान मालोमहे जिला स्यालकोट में प्यारे ऋषि पर ईंटें पत्थर वर्षाने वाले विद्वान् पं. हीरानन्द जी सायं प्रातः अपनी ऊँची आवाज में **'तुम हो प्रभु चाँद'** और **'जय जय पिता परम'** की तान छेड़ते थे तो क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, ईसाई सब मुग्ध होकर सुना करते थे।

२५ जुलाई पुण्यतिथि पर विशेष

इतिहास की परतें- मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

पूज्य मास्टर आत्माराज जी अमृतसरी भारतमाता के एक महान् सपूत थे। वे एक गुणसम्पन्न, तपस्वी, साहसी, पुरुषार्थी, परमार्थी, ज्ञानी, समाज-सेवी, सुधारक और विचारक थे। भारत के नवनिर्माण के और समाज द्वारा सुधार के इतिहास में उनका एक अविस्मरणीय और विशेष स्थान है। आधुनिक काल में भारतवर्ष में दलितोद्धार आन्दोलन के इतिहास में उन्हें नींव का पत्थर कहना चाहिये। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की दलितोद्धार के लिये तड़प व सेवायें निर्विवाद रूप से बेजोड़ हैं। स्वामी जी महाराज के पश्चात् पूजनीय मास्टर आत्माराम जी का ही इस क्षेत्र में नाम आता है। आर्यसमाज के कई नेताओं व कर्मवीर सपूतों ने इस क्षेत्र में ऐतिहासिक कार्य किया है।

वीर रामचन्द्र से लेकर वीरवर मेघराज जी तथा महात्मा फूलसिंह आदि ने दलितोद्धार के लिये प्राणोत्सर्ग कर दिये। पं. गंगाराम जी, ला. गंगाराम जी, मेहता जैमिनि, चौधरी रामभजदत्त, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, श्री कर्मचन्द वकील, शूर शिरोमणि भाई श्यामलाल शहीद की सेवायें व बलिदान स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं।

आज हमें महात्मा आत्माराम जी की सेवाओं पर ही कुछ लिखना है। लिखने के लिये बहुत कुछ है, परन्तु समस्या है कि क्या लिखें और क्या छोड़ें। मास्टर जी मूलत: राजस्थानी थे। जातिवाद व प्रान्तवाद की बन्धन कड़ियों के कारण एक-दूसरे से कटे-फटे हिन्दू समाज के लिये हमारे पूजनीय महात्मा आत्माराम जी का जीवन एक अनूठा आदर्श है। वे राजस्थानी थे, परन्तु उनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा पंजाब में हुई उनके सार्वजनिक जीवन का आरम्भ भी पंजाब में हुआ। वे वैदिकधर्मी भी पंजाब में बने।

आप अमृतसर के राजकीय विद्यालय में पढ़ते हुये ऋषि-जीवन में वर्णित मास्टर मुरलीधर जी के सम्पर्क में आये। श्रद्धेय मुरलीधर जी ने सीधे ऋषि दयानन्द जी से वैदिक-धर्म की दीक्षा ली थी। प्रकाण्ड विद्वान् अथवा मिशनरी मुरलीधर जी के व्यक्तित्व की आप पर गहरी छाप पड़ी। एक दिन मास्टर मुरलीधर जी ने इन्हें कक्षा में कहा, "आत्माराम तुम बहुत प्रसिद्ध, कुलीन, धनीमानी हो। तुम्हारे पिता स्वर्गीय लाला राधाकिशन जी तहसीलदार लुधियाना की प्रशंसा हम अमृतसर तथा लाहौर में लाला जीवनदास जी जो लाहौर समाज के नामी संचालक हैं, से भी सुना करते हैं। तुम ऐसे नामी पिता के सपूत होने पर जब कक्षा में अन्य सब विषयों में तथा मेरे विषय में भी सदैव प्रथम रहा करते हो तो तुमको धर्मपिता समान मैं यह उपदेश देना चाहता हूँ कि तुम अमृतसर में जो भाई सालो के कटड़ा में आर्यसमाज का उत्सव हुआ करता है उसमें अवश्य जाया करो। परसों तो अवश्यमेव आना। वहाँ हमारे एक प्रकाण्ड विद्वान् तथा प्रख्यात सुवक्ता पेशावर से पधारे पं. लेखराम जी का व्याख्यान होगा। सुनने के लिये आना।"[१]

आत्माराम जी पं. लेखराम को सुनने गये। भाषण क्या सुना, बस यह जानिये कि आर्यसमाज उनमें ऐसा प्रविष्ट हुआ कि वे सदा-सदा के लिये आर्यसमाज के हो गये। पं. लेखराम जी से वार्तालाप किया तो पण्डित जी ने उनको धर्म-सेवा व धर्म- रक्षा के लिये अनुप्राणित कर दिया। मूर्तिपूजा के कारण मन उदास व बुझा-बुझा रहा करता था। यह क्या हिन्दू धर्म है कि पत्थरों के भगवान् आक्रमणकारियों से सदा अपमानित होते रहे। पं. लेखराम जी ने अपने व्याख्यान में सप्रमाण सिद्ध कर दिया कि वेद में कहीं भी पाषाण-पूजा का विधान नहीं है। यह अज्ञान है, वेद-विरुद्ध है और पापकर्म है। मास्टर आत्माराम यह सुनकर फड़क उठे और पक्के व सच्चे एकेश्वरवादी उसी दिन से बन गये।

आर्य डिबेटिंग क्लब- व्याख्यान के पश्चात् पण्डित जी ने वहाँ आर्य डिबेटिंग क्लब की स्थापना कर दी जिसके प्रधान वे स्वयं बने और मन्त्री आत्माराम जी नियुक्त किये गये। यह क्लब सन् १८८६ से लेकर सन् १९७० तक तो चलती रही। इसने शास्त्रार्थ व वादविवाद करने में सुदक्ष

कई वक्ता विद्वान् आर्यसमाज को दिये। इन पंक्तियों का लेखक भी कादियाँ से जाकर इसमें सक्रिय भाग लेता रहा। प्राचार्य रमेश जीवन भी इससे जुड़े रहे। अमृतसर के अद्भुत आर्यसमाजी वाग्मी महाशय काहनचन्द जी ने वर्षों इस क्लब द्वारा आर्य-धर्म की धूम मचाई। श्री पं. सत्यपाल जी पथिक भी इन महाशय काहनचन्द जी के बहुत प्रशंसक रहे।

पं. लेखराम जी के शिष्य बन गये- आत्माराम जी ने अपना यज्ञोपवीत संस्कार करवाया। पूज्य पं. लेखराम जी को अपना धर्मगुरु मानते हुए उन्हीं से यज्ञोपवीत धारण किया और उन्हीं के अनुगामी बनकर उसी कण्टक-पथ पर चल पड़े।

वे क्या क्या थे?- पं. आनन्दप्रिय जी ने इस सेवक को उनका खोजपूर्ण विस्तृत जीवन लिखने के लिये लिखित व मौखिक बहुत प्रेरणा दी। किन्हीं कारणों से ऐसा न हो सका। वे क्या-क्या थे? यह पाठक नोट कर लें। वे एक आदर्श मिशनरी थे। महान् सुधारक, विचारक और सशक्त लेखक, कुशल अनुवादक थे। आपने अनेक विषयों पर मौलिक ग्रन्थ लिखे। संस्कार विधि पर उनके ग्रन्थ की ऐसी धूम रही कि कई नामी लेखकों ने इसकी पूरी तस्करी करके आत्माराम जी के प्रति कृतज्ञता तो क्या प्रकट करनी थी आभार तक प्रकट न किया।

१. आपने पं. लेखराम लिखित ऋषि जीवन के अति कठिन कार्य का सम्पादन किया।

२. आपने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम और ऐतिहासिक उर्दू अनुवाद का पूज्य रैमलदास जी के साथ मिलकर अति कठिन कार्य सिरे चढ़ाया। आपने कौन-कौन से समुल्लास का अनुवाद किया यह कभी फिर बताया जावेगा।

३. आपने पं. गुरुदत्त जी की भी कई कृतियों का उर्दू अनुवाद किया जिसे पंजाब सभा ने छपवाया था। हमने परोपकारिणी सभा को ये पुस्तकें सौंप दी थीं। सत्यार्थप्रकाश का उनका उर्दू अनुवाद भी अजमेर में सुरक्षित है। प्रभु नये युग के नये तस्करों से यह ज्ञान-सम्पदा बचाये।

४. आपने एक विदेशी लेखक की एक अंग्रेजी पुस्तक का भी हिन्दी अनुवाद किया था। न जाने वह किसे दे बैठा।

५. आप एक नामी शास्त्रार्थ महारथी थे। नगीना ज़िला बिजनौर के ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में एक ओर तो सैकड़ों मौलवी आपके सामने डटे हुये थे। शास्त्रार्थ मौलवी सनाउल्ला जी ने किया। आर्यसमाज की ओर से अकेला केसरी मास्टर आत्माराम दहाड़ रहा था। सहस्रों की संख्या में मुसलमानों ने आपको सुना। तब महात्मा मुंशीराम जी शास्त्रार्थों के पक्ष में नहीं रहे थे (इसके कुछ कारण भी थे) शास्त्रार्थ में वैदिक धर्म का डंका बजाकर आत्माराम पूज्यपाद सेनानी महात्मा मुंशीराम जी के दर्शनार्थ कांगड़ी गुरुकुल गये।

महात्मा जी ने पूछा, ''शास्त्रार्थ से लाभ क्या हुआ?''

आत्माराम ने कहा, ''सहस्रों मुसलमानों ने शान्तिपूर्वक ऋषि के प्राणों से प्यारे वैदिक-धर्म का स्वरूप व सन्देश जाना, क्या यह कोई छोटी-सी उपलब्धि है?''

महात्मा यह उत्तर पाकर गदगद हो गये।

६. पूज्य आत्माराम जी वैदिक सिद्धान्तों पर पं. रामचन्द्र जी देहलवी तथा पं. लेखराम के सदृश एक मौलिक शैली से ही बोला करते थे। दुर्भाग्य से उनके मौलिक लेखों को संग्रहीत करके हिन्दी, अंग्रेज़ी में प्रकाशित न किया गया। उनके एक मार्मिक लेख **'हज़रत आदम का मुकद्दस भोजन' का हमने आंशिक अनुवाद किया। अमेरिका से प्रकाशित बाइबिल के नये अनुवाद में उत्पत्ति की पुस्तक में मांस विषयक पाठ भेद का एक कारण हमें मास्टर जी का उपरोक्त लेख भी प्रतीत होता है। यह कोई छोटी बात नहीं है।**

७. आप पंजाब सभा के कभी मन्त्री तथा उपदेशक भी रहे। एक समय था जब हमारे रामों ने आर्यधर्म की धूम मचा रखी थी। लेखराम, मणिराम (आर्य मुनि जी), मुन्शीराम, कृपाराम, तोलाराम, घासीराम, आत्माराम आदि आर्यसमाज की वेदी की शोभा थे।

८. मोदी जी ने स्त्री-शिक्षा पर बोलते हुये एक से अधिक बार गुजरात मॉडल की चर्चा करते हुये सयाजीराव गायकवाड़ का उल्लेख तो किया, परन्तु पूजनीय स्वामी नित्यानन्द जी तथा आत्माराम जी का कभी नाम नहीं लिया। प्रधानमन्त्री इनका नाम लें ही क्यों? ये कोई विवेकानन्द थोड़े थे। लेख लम्बा न हो जाये सो सुधारक

आत्माराम जी पर संक्षेप से कुछ लिखकर लेखनी को विश्राम देंगे।

९. स्वामी नित्यानन्द जी महाराज के सामने सयाजीराव ने अपने राज्य की एक समस्या रखी। वह दलितोद्धार करें तो कैसे? दलितों से स्नेह करने वाला शिक्षक कहाँ से लायें? उनमें घुलमिलकर जो कार्य करे, ऐसे दलित-हितैषी, समाजसेवी और वैर-विरोध का विषपान कर सके वहाँ मिलना कठिन था। परोपकारिणी सभा के महात्मा नित्यानन्द जी का महाराजा पर प्रभाव था। आपकी प्रेरणा से महाराजा ने पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा से एक ऐसा प्रतापी समाजसेवी मिशनरी शिक्षक माँगा।

सभा ने आत्माराम जी के रूप में एक अनमोल रत्न वहाँ भेज दिया।

भूत बंगले में रहे- इन्हीं आत्माराम की कृपा से देशरत्न डॉ. भीमराव का बड़ौदा राज्य ने निर्माण किया। आत्माराम जी को धर्म-प्रेम, जाति-भक्ति और समाजसुधार का मूल्य चुकाना पड़ा। रहें कहाँ पर? कौन ऐसे कुरीति-निवारक दलित सेवक को मकान किराये पर देवे? 'भूत बंगले' में इस नररत्न का निवास रहा। दलित बालकों का भोजन तक हमारी माताजी (आत्माराम जी की पत्नी) बनाती रहीं। बड़ौदा राज्य शिक्षा व समाज सुधार में देश का सर्वश्रेष्ठ राज्य बन गया।

गुरुकुल कोल्हापुर- कोल्हापुर के नरेश शाहूजी के पौत्र का विवाह बड़ौदा की राजकुमारी से हुआ। बड़ौदा नरेश के साथ जुड़कर शाहू जी को शिक्षा-प्रसार, समाज-सुधार व धर्मप्रचार की लगन लगी। शाहू जी ने आत्माराम जी की प्रेरणा से ३ अप्रैल १९१८ को कोल्हापुर में गुरुकुल की स्थापना करके क्रान्ति का शंखनाद कर दिया। वहाँ आर्यसमाज स्थापित करके उ.प्र. सभा से उसका सम्बन्ध जोड़ा गया। राजाराम कॉलेज और स्कूल आर्यसमाज को शाहूजी ने सौंपे। महाविद्वान् डॉ. बालकृष्ण जी पंजाब से प्रिंसिपल बनकर वहाँ पहुँचे। पूज्य उपाध्यायजी स्कूल के हैडमास्टर बनकर वहाँ गये। प्रेस भी लग गया। प्रिंसिपल महेन्द्रप्रताप और डॉ. अविनाश चन्द्र बोस जैसे रत्न वहाँ समाज ने भेजे। वहाँ से पर्याप्त आर्य साहित्य छपा था। हमने ख़ूब पढ़ा है।

आत्माराम जी का पत्र पाकर- इन सब योजनाओं को मूर्तरूप देने के लिये आर्यगौरव पं. गांगप्रसाद चीफ़ जज शाहूजी महाराज से मिलने बड़ौदा पहुँचे। समय तंग था। शाहूजी पौत्र के विवाह में संलग्न थे। पं. गंगाप्रसाद जी की भी व्यस्ततायें थीं। आत्माराम जी ने पं. गंगाप्रसाद जी से कहा, "आप अपना visiting card परिचय-पत्र लेकर मेरे पत्र के साथ महाराज के पास पहुँचें। वे आपको अवश्य समय देंगे। राजाओं महाराजाओं के बीच बैठे पौत्र के विवाह के समय आत्माराम जी का पत्र देखते ही शाहू जी पूज्य गंगाप्रसाद चीफ़ जज से मिलने आ गये। पाँच मिनट ही प्रतीक्षा करनी पड़ी। ऐसा चमत्कारी प्रभाव था पूज्य आत्माराम जी का। पं. गंगाप्रसाद यह देखकर दंग रह गये।"

शाहूजी का निधन- गोराशाही और पोंगापंथियों से छत्रपति शिवाजी के वंशजों पर महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का प्रभाव सहा न गया। सरकार का Resident सब कुछ देखता था। शाहू जी शीघ्र चल बसे और आर्यसमाज को अगले नरेश ने उखाड़ फेंका। यह कहानी यहाँ क्या दूँ? यह सेवक भी कभी पन्द्रह दिन वहाँ धर्म-प्रचार के लिये डटकर रहा। जिस समय यह लेख लिखा जा रहा है, हमारे मन्त्री ओम्मुनि उन इतिहास पुरुषों, कर्मवीरों की चरणधूलि कोल्हापुर की गलियों-सड़कों पर खोज रहे हैं। **ग्रन्थरत्न आस्तिकवाद कोल्हापुर में ही लिखा गया था। शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर हमारे ही डॉ. बालकृष्ण** जी के मस्तिष्क की देन है। इस इतिहास के सृजन का बीज आत्माराम जी ने ही तो बोया था।

टिप्पणी-

१. 'मैं कैसे आर्यसमाजी बना?' उर्दू पुस्तक पृष्ठ ३० से।

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

(स. प्र. ३)

योग-साधना एवं स्वाध्याय शिविर, ऋषि-उद्यान, अजमेर (१७ जून-२४ जून)

श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा अनासागर के सुरम्य तट पर स्थित महर्षि की स्मरण-स्थली 'ऋषि-उद्यान' में योग साधना एवं स्वाध्याय शिविर का आयोजन दिनांक १७-०६-२०१८ से २४-०६-२०१८ (पूर्वाह्न) तक किया गया। शिविर में भारत के विभिन्न प्रान्तों से आए हुए १३५ शिविरार्थी स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया। इसमें युवा और किशोरवय के शिविरार्थी भी थे। सभी ने योगसाधना का अभ्यास किया एवं लाभ प्राप्त किया।

शिविर में शिविरार्थियों को सन्ध्या-ध्यान-उपासना का क्रियात्मक अभ्यास एवं मार्गदर्शन कराने के लिए श्रीमत्स्वामी श्री केवलानन्द जी महाराज (संन्यास एवं वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर) एवं स्वामी अमृतानन्द जी महाराज (गुरुकुल आश्रम जमानी, इटारसी, म.प्र.) ने अपना बहुमूल्य समय एवं सहयोग प्रदान किया।

शिविर में योगार्थियों एवं जिज्ञासुओं को सैद्धान्तिक मार्गदर्शन प्रदान करने एवं शंका-समाधान के लिए मेरठ से पधारे परोपकारिणी सभा के सम्मानित सदस्य एवं प्रख्यात वैदिक विद्वान् एवं प्रवक्ता डॉ. वेदपाल जी का सहयोग प्रतिदिन प्राप्त हुआ। उन्होंने जिज्ञासुओं की सभी प्रकार की व्यावहारिक एवं शास्त्रीय शंकाओं का सम्यक् समाधान प्रस्तुत किया जिससे सभी शिविरार्थी आनन्दित हुए।

शिविरार्थियों को पातंजल योगदर्शन की शास्त्रीय एवं प्रामाणिक व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए श्रीमान् तपेन्द्र कुमार जी (वानप्रस्थ) उपस्थित थे। उन्होंने योग सूत्रों की व्याख्या के साथ-साथ साधकों को औपनिषदिक प्राणोपासना के प्रायोगिक पक्ष से भी परिचित कराया। ध्यातव्य है कि वे 'परोपकारी' पत्रिका में प्राणोपासना पर एक सुदीर्घ शृंखला लिख रहे हैं, जो विशेषज्ञों एवं जिज्ञासुओं से प्रशंसित हुई है।

श्रीगंगानगर से पधारे प्रसिद्ध आर्यविद्वान् पंडित रामनिवास गुणग्राहक ने योग के वैदिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर विचार रखते हुए जीवन में योग के महत्त्व को प्रतिपादित किया तथा शिविरार्थियों से योगाभ्यास से प्राप्त उपलब्धियों पर चर्चा की।

परोपकारिणी सभा के सदस्य एवं वैदिक प्रवक्ता डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी' (नई दिल्ली) ने महर्षि दयानन्द के योगविषयक विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करते हुए अनेक उदाहरणों से स्पष्ट किया कि महर्षि ने विभिन्न योगांगों को ज्ञान-कर्म-उपासना में समाहित कर सबके लिए सुलभ कर दिया है एवं योगाभ्यास प्रत्येक आश्रमी के लिए सहजतया सुलभ हुआ है। उन्होंने महर्षि के जीवन में योग से जुड़ी अनेक घटनाएँ भी प्रस्तुत कीं। उन्होंने सन्ध्या के मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के साथ-साथ शिविरार्थियों का आत्मनिरीक्षण विषय पर भी मार्गदर्शन किया।

सायंकाल में ऋषि उद्यान के विस्तृत क्षेत्र में श्री सोमेश पाठक के नेतृत्व में भ्रमण-श्लोक-गायन का भी आयोजन नित्य होता रहा, जिसमें वेदमन्त्रों के अतिरिक्त ईश्वर-राष्ट्र-भक्ति की गीतिकाओं एवं श्लोकों का गायन एक सामूहिक वृत्त में भ्रमण करते हुए किया जाता था। इससे उद्यान में एक विशिष्ट आध्यात्मिक वातावरण की निर्मिति होती थी।

शिविरार्थियों ने अधिकांशत: मौन-व्रत का पालन किया तथा ऋषि उद्यान के पेरिसर, भोजनालय एवं अन्य स्थानों पर श्रमदान करके स्वच्छता एवं व्यवस्था में सराहनीय सहयोग किया।

शिविर का समापन अत्यन्त सौम्य एवं आध्यात्मिक वातावरण में बृहद् यज्ञशाला में किया गया। उद्यान में स्थित गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वारा सम्पन्न दैनिक यज्ञ के पश्चात् स्वामी केवलानन्द जी महाराज तथा स्वामी अमृतानन्द जी महाराज ने शिविर के दौरान प्रदत्त मार्गदर्शन के सार-संक्षेप के साथ-साथ जीवन में योग की महत्ता को पुन: रेखांकित किया तथा भावी जीवन में परमात्मा की प्राप्ति एवं आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए योग-मार्ग को स्वीकार करने की सलाह दी। साधकों को प्राप्त होने वाली यौगिक उपलब्धियों के स्वरूप-निदर्शन के साथ सात्विकता को अपनाने एवं राग-द्वेष छोड़कर आनन्दमय एवं निष्कपट जीवनशैली अपनाने पर भी उक्त यतियों ने बल दिया। उनका यह दीक्षान्त उपदेश अत्यन्त प्रभावी रहा।

इस समापन-समारोह के अन्त में सभा के संयुक्त मन्त्री डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा ने सभा के न्यासी सदस्यों, अधिकारियों, विद्वानों, सहयोगियों एवं शिविरार्थियों को धन्यवाद-ज्ञापन किया। तत्पश्चात् शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। इस कार्यक्रम का संचालन डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी ने किया।

शिविर की अवधि में यज्ञशाला में संपन्न होने वाले दैनिक यज्ञ के पश्चात् विभिन्न दिवसों में दोनों यतियों के अतिरिक्त प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, डॉ. वेदपाल, पं. रामनिवास गुणग्राहक, डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा और डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी के भी प्रवचन हुए।

शिविर में सभा के मन्त्री श्री ओम्मुनि जी के अतिरिक्त आचार्य विरजानन्द दैवकरणि, श्री सुभाष नवाल, डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा तथा श्री कन्हैयालाल आर्य की गरिमामय उपस्थिति भी समय-समय पर रही।

ध्यान-साधना शिविर की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेते साधक-साधिकाएँ

आर जे/ए जे/80/2018-2020 तक   प्रेषण : १५-१६ जुलाई, २०१८   आर.एन.आई. ३९५९/५९

तीव्र स्मृति एवं मेधा के धनी, इतिहासज्ञ

आचार्य रामदेव

जन्म - ३१ जुलाई १८८१

मृत्यु - ९ दिसम्बर १९३९

सम्बन्धित लेख पृष्ठ संख्या ९ पर

मास्टर आत्माराम अमृतसरी

जन्म - आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा १९२४ वि.

तदनुसार १८ जून १८६७

मृत्यु - २५ जुलाई १९३८

सम्बन्धित लेख पृष्ठ संख्या ३९ पर

ऋषि दयानन्द के शिष्य एवं उच्च कोटि के कवि

मेहता अमीचन्द (चित्र अनुपलब्ध)

जन्म - अज्ञात, मृत्यु-२९ जुलाई १८९३

सम्बन्धित लेख पृष्ठ संख्या ३७ पर

प्रेषकः
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१